



उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

साहित्यशास्त्र और हिन्दी समालोचना भाग 2

द्वितीय सत्र (MAHL 508)



विशेषज्ञ समिति

प्रो.एच.पी. शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही' निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, रामगढ़, नैनीताल
प्रो.एस.डी.तिवारी. विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढ़वाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	डा. जितेन्द्र श्रीवास्तव हिन्दी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि.,दिल्ली
प्रो.डी.एस.पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,	प्रो.नीरजा टंडन हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा.राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डा.शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल
---	--

डॉ. दिलीप पांडे, रजा पी.जी. कॉलेज, रामपुर – उ.प्र.	15
डॉ. शशांक शुक्ला , हिन्दी विभाग, उत्तराखंड मु.वि.वि.हल्द्वानी -	16,17,18
डॉ. शिरीष कुमार मौर्य , हिन्दी विभाग, कुमाऊं वि.वि.नैनीताल -	19,20,21,22

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: नवम्बर, 2011 / पुनर्संस्करण 2022

प्रकाशक: निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन

mail : studieseou.ac.in

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

ISBN 978-93-84632-70-0

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

द्वितीय सत्र हेतु	साहित्यशास्त्र और हिन्दी समालोचना	भाग दो
MAHL 508		
खण्ड 3 – पाश्चात्य साहित्य सिद्धांत	पृष्ठ संख्या	
इकाई 15 मार्क्सवाद	225-239	
इकाई 16 आधुनिकतावाद, उत्तर आधुनिकतावाद	239-256	
इकाई 17 संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद शास्त्रवाद , नव्य शास्त्रवाद ,नई समीक्षा	257-276	
इकाई 18 स्वच्छन्दतावाद, बिबंवाद, प्रतीकवाद , यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, दादावाद, शैलीविज्ञान	277-293	
खण्ड 4 –हिन्दी समालोचना	पृष्ठ संख्या	
इकाई 19 हिन्दी आलोचना : आचार्य रामचंद्र शुक्ल और उनका युग	294-307	
इकाई 20 शुक्लोत्तर युग एवं हिन्दी आलोचना	308-326	
इकाई 21 प्रगतिशील आलोचना एवं रामिवलास शर्मा	327-341	
इकाई 22 समकालीन हिन्दी आलोचना और नामवर सिंह	342-355	

इकाई 15 मार्क्सवाद

- 15.1 प्रस्तावना
- 15.2 उद्देश्य
- 15.3 मार्क्सवाद के उदय की पृष्ठभूमि और प्रेरणा स्रोत
- 15.4 मार्क्सवाद की अवधारणा
 - 15.4.1 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
 - 15.4.2 ऐतिहासिक भौतिकवाद
- 15.5 मार्क्सवाद के प्रमुख तत्व/विशेषताएँ
- 15.6 मार्क्सवाद और हिन्दी साहित्य
- 15.7 मार्क्सवाद और हिन्दी समालोचना
- 15.8 सारांश
- 15.9 शब्दावली
- 15.10 उपयोगी संदर्भ पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

'मार्क्सवाद' शब्द अंग्रेजी के 'मार्क्सिज्म' का हिन्दी रूपांतर है। मार्क्सवादी चिन्तन का उद्भव कार्लमार्क्स (1818-1883 ई.) के विचारों से होता है। यह जीवन का सम्पूर्ण दर्शन माना जाता है। मार्क्सवादी दर्शन का मूल लक्ष्य परिवर्तन है। चूँकि परिवर्तन मूलतः क्रियाशीलता का प्रतीक है, इसलिए कुछ विद्वान मार्क्सवाद को क्रियात्मक दर्शन भी स्वीकार करते हैं।

इस इकाई में मार्क्सवाद के उदय की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए उसकी अवधारणाओं, प्रेरणा स्रोतों और मूल विचार बिन्दुओं को स्पष्ट किया गया है।

प्रस्तुत इकाई में हिन्दी साहित्य में मार्क्सवाद के प्रभावों की चर्चा करते हुए प्रगतिवादी साहित्य की प्रवृत्तियों की विवेचना की गई है। साथ ही हिन्दी समालोचना में मार्क्सवादी प्रभावों को विश्लेषित किया गया है जिनका अध्ययन हिन्दी साहित्य और हिन्दी समालोचना को समझने में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा।

15.2 उद्देश्य

इससे पूर्व की इकाइयों में आप पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के प्रमुख साहित्य सिद्धान्तों से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई में आपका परिचय मार्क्सवाद से कराया जायेगा। इसे पढ़कर आप -

- 1 मार्क्सवाद की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- 2 मार्क्सवाद दर्शन के विविध प्रेरणा-स्रोतों के बारे में जान सकेंगे।
- 3 मार्क्सवाद की अवधारणा और स्वरूप को समझ सकेंगे।
- 4 मार्क्सवाद के दार्शनिक और सामाजिक पहलुओं को भली-भाँति जान सकेंगे।
- 5 मार्क्सवादी विचारधारा के हिन्दी साहित्य से परिचित हो सकेंगे।
- 6 हिन्दी समालोचना में मार्क्सवादी प्रभाव को समझ सकेंगे।

15.2 मार्क्सवाद के उदय की पृष्ठभूमि और प्रेरणा स्रोत

मार्क्सवाद 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का दर्शन है। इसका उदय तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हुआ। कार्लमार्क्स के समय में औद्योगिक क्रान्ति ने यूरोप में, विशेषतः इंग्लैंड में जटिल आर्थिक समस्याएँ उत्पन्न कर दी थीं। पूँजीपतियों के शोषण से श्रमिकों की स्थिति गिरती जा रही थी। राज्य इसमें हस्तक्षेप नहीं करता था। फलतः

पूँजीपतियों और श्रमिकों में वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ हो गया था। इस संघर्ष में मार्क्स ने स्वयं श्रमिकों का साथ दिया। अपने समय में बदलती परिस्थितियों के प्रति कार्लमार्क्स में शुरूआती दौर में केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया थी किन्तु बाद में मार्क्स ने तर्क और वैज्ञानिक पद्धति से इसका गहन अध्ययन किया और आने वाले निष्कर्षों को सैद्धान्तिक रूप दिया। मार्क्सवाद का मूल दर्शन 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' है द्वन्द्व-सिद्धान्त वस्तुतः 'डायलेगो' ग्रीक शब्द से बना है जिसका वास्तविक अर्थ वाद-विवाद करना होता है। प्राचीनकाल में ग्रीक में वाद-विवाद की परम्परा थी जिसमें लोग एक-दूसरे की बातों में तार्किक असंगतियों से अपना विरोध प्रकट करके सत्य का अन्वेषण करते थे। कुछ ऐसे विचारक भी थे जो यह मानते थे कि सत्य की उत्पत्ति दो विरोधी बातों के संघर्ष से होती है। पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के प्रमुख विचारक प्लेटो की दार्शनिक रचनाएँ भी इस पद्धति का अनुसरण करती हैं। प्लेटो यह मानता था कि द्वन्द्व अर्थात् डायलेक्टिस सत्य को पाने का एक बौद्धिक साधन है। ग्रीकवासियों की द्वन्द्व-कल्पना की मूल प्रकृति को आधुनिक विचारक हीगेल ने ग्रहण किया। हीगेल के अनुसार मनुष्य का सम्पूर्ण इतिहास विरोधी तत्वों के आपसी संघर्षों से निर्मित हुआ है। हीगेल प्रत्ययवादी विचारक था।

कार्लमार्क्स अपने समकालीन और पूर्ववर्ती दार्शनिकों के विचारों से अत्यंत प्रभावित रहा है। मार्क्सवादी दर्शन की स्थापना के मूल में इनका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस आधार पर मार्क्सवाद के मुख्यतः चार दार्शनिक स्रोत हैं:-

- 1 ग्रीक भौतिकवाद
- 2 क्लैसिकल जर्मन दर्शन
- 3 फ्रांसीसी समाजवाद
- 4 क्लैसिकल ब्रिटिश समाजवाद

1- ग्रीक भौतिकवादी विचारक डेमोक्रेटस (460-361 ई.पू) और हेरेक्लिटस (540-475 ई.पू) से मार्क्स ने यह ग्रहण किया कि वास्तविकता भौतिकवादी है और इसकी यथार्थ स्थिति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। भौतिकवादी प्रकृति निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। हेरेक्लिटस ने इससे आगे बढ़कर इस सत्य की ओर भी संकेत किया कि भौतिकवादी प्रकृति में परिवर्तन भी एक निश्चित पद्धति या प्रणाली से होता है। समूचा परिवर्तन विरोधी तत्वों के संघर्ष से होता है। अतः परिवर्तन ही सत्य है और संघर्ष ही वह पद्धति है जिससे परिवर्तन होता है।

2- क्लैसिकल जर्मन दर्शन के अन्तर्गत कार्लमार्क्स प्रत्ययवादी दार्शनिक हीगेल (1771-1831) और फायरबाख (1804-1872) से गहरे प्रभावित रहे हैं। जर्मन दार्शनिक हीगेल का विचार था कि सृष्टि का सारा परिवर्तन विरोधी तत्वों के संघर्ष से होता है। हीगेल की द्वन्द्वात्मक परिवर्तन

प्रणाली को 'परिवर्तनत्रयी' के नाम से जाना जाता है। इस प्रणाली के अनुसार सत्य का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता। परिवर्तन मात्र ही सत्य है। कार्लमार्क्स ने हीगेल से इसी सत्य को ग्रहण किया किन्तु हीगेल की 'परिवर्तनत्रयी' का सिद्धान्त मनुष्य के विचारों और चेतना के स्तर पर प्रतिष्ठित हुआ था जबकि कार्ल मार्क्स ने इसकी व्यवहारिकता स्वीकार की। हीगेल के प्रत्ययवादी दर्शन से कार्लमार्क्स को पदार्थवादी दर्शन की ओर मोड़ने में जर्मन दार्शनिक फायरबाख (1804-1872 ई.) की दार्शनिक मान्यताओं का महत्वपूर्ण योगदान है। फायरबाख भौतिक पदार्थ को ही सत्य मानता है। इसी आधार पर मार्क्स ने यह स्वीकार किया कि भौतिक पदार्थ सत्य है और विचार उसकी छाया है। इस तरह हीगेल और फायरबाख के दर्शन को समन्वित करके कार्लमार्क्स ने 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धान्त को जन्म दिया जो मार्क्सवादी दर्शन का मूल आधार है।

3- फ्रांस का समाजवादी दर्शन समाजवाद के आदर्शों पर प्रकाश डालता है। समाजवादी क्रान्ति किस प्रकार हो, किन वर्गों को किस प्रकार से क्रान्ति के लिए प्रस्तुत किया जाए ये बातें मार्क्स ने फ्रांस के समाजवादियों से ग्रहण करते हुए वैज्ञानिक समाजवाद की प्रतिष्ठा की जो एक सम्पूर्ण और व्यापक सामाजिक जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकृत हुआ।

4- क्लैसिकल ब्रिटिश अर्थशास्त्र की प्रेरणा से मार्क्स ने श्रमिकों को सामाजिक महत्व प्रदान किया। ब्रिटिश अर्थशास्त्रियों के अनुसार किसी पदार्थ को मूल्य अर्थात् वैल्यू प्रदान करने की क्षमता केवल श्रम में है। इस विचार के आधार पर मार्क्स ने यह सिद्धान्त बनाया कि प्रत्येक पदार्थ का मूल्य श्रम द्वारा निर्मित होता है। पूंजीपति श्रमिक को उसके श्रम का उचित मूल्य न देकर उसे केवल उतना ही देता है जितना उसके जीवन के निर्वाह के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार वह निर्मित मूल्य की कीमत मुनाफे के रूप में अपने पास रख लेता है और अन्ततः श्रमिकों का शोषण करता है। मार्क्स ने इसे 'सरप्लस वैल्यू' का सिद्धान्त कहा है।

15.3 मार्क्सवाद का दर्शन

15.1 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि मार्क्सवाद सृष्टि और समाज का एक समन्वित दर्शन है। इस दर्शन का आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सृष्टि और समाज के भौतिकवादी अध्ययन का एक विशेष दृष्टिकोण है। हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं कि संसार की प्रत्येक वस्तु अंततः नष्ट हो जाती है। मानव जीवन और जगत में जन्म-मृत्यु और सृजन-विनाश शाश्वत है। सृष्टि का जीवन उसकी गतिशीलता में है। गतिशीलता के कारण ही सृष्टि में परिवर्तन का शाश्वत क्रम चलता रहता है। मानव जीवन और प्रकृति में परिवर्तन की यह अंतहीन यात्रा सृष्टि के आरम्भ से ही चलती रही है। इस व्यापक सत्य के आधार पर मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दर्शन की स्थापना की। मार्क्स का मानना है कि सृष्टि में परिवर्तन एक निश्चित नियमों के अनुसार होता है ये नियम

विज्ञान के नियम की तरह स्थिर और सार्वभौमिक हैं। कार्लमार्क्स के अनुसार सृष्टि का पदार्थ (मैटर) अपने रूप में निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। परिवर्तन का आधार द्वन्द्वात्मक है। हर एक परिस्थिति के मूल में संघर्ष है। संघर्ष से ही विकास होता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में विकास के तीन चरण माने गये हैं। पहला, प्रत्येक पदार्थ के विरोधी तत्व उसी में निहित रहते हैं किन्तु वे कुछ समय तक दबे रहते हैं, अर्थात् पदार्थ की स्थिर अवस्था को 'वाद' कहते हैं जिसे मार्क्स ने 'थीसिस' कहा है। कालान्तर में उस अवस्था (वाद) के विरोधी तत्व प्रकट रूप से 'वाद' का विरोध करने लगते हैं। उस अवस्था को 'प्रतिवाद' अर्थात् 'एंटीथीसिस' कहते हैं। 'वाद' और 'प्रतिवाद' के द्वन्द्व अर्थात् संघर्ष से एक तीसरी अवस्था का जन्म होता है जो उन दोनों अवस्थाओं से भिन्न होती है और जिनमें उन दोनों अवस्थाओं (वाद व प्रतिवाद) के अंश निहित रहते हैं। इस तीसरी अवस्था को 'संवाद' अर्थात् 'सिंथीसिस' कहते हैं। 'वाद' से 'संवाद' तक की अवस्थाओं का विकास मात्रात्मक से गुणात्मक परिवर्तन की ओर होता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के संदर्भ में विकास के इस सिद्धांत को 'विकासत्रयी' अर्थात् 'डेवलपमेंट ट्रायो' कहते हैं विकास की दृष्टि से द्वन्द्व सिद्धान्त के निम्नलिखित चार सूत्र हैं -

- 1 विरोधों की एकता
- 2 विरोधों का आपसी संघर्ष
- 3 इस संघर्ष से एक नयी समन्वित अवस्था का जन्म
- 4 वाद से संवाद तक का परिवर्तन

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की हीगेल और फायरबाख के द्वन्द्व-दर्शन से तुलना -
मार्क्सवाद के प्रेरणा-स्रोत के सन्दर्भ में आप यह जान चुके हैं कि अपने दर्शन में कार्लमार्क्स हीगेल और फायरबाख के दर्शन से प्रभावित था किन्तु मार्क्स का दर्शन हीगेल और फायरबाख से कुछ बातों में भिन्न है। जर्मन विचारक हीगेल प्रत्ययवादी था। ग्रीक की वाद-विवाद की प्राचीन परम्परा से हीगेल ने यह तथ्य ग्रहण किया कि दो विरोधी मतों में संघर्ष होता है और उसी संघर्ष से नये मत की सृष्टि होती है। इस प्रणाली में संघर्ष अनिवार्य है। उसी से सत्य का जन्म होता है। हीगेल के अनुसार मनुष्य का सम्पूर्ण इतिहास विरोधी तत्वों के आपसी संघर्ष से निर्मित हुआ है। प्रत्ययवादी विचारक होने के कारण हीगेल पदार्थ (मैटर) को प्रधान नहीं मानता। अतः उसका द्वन्द्व-दर्शन मनुष्य के बाहरी इतिहास और प्रकृति पर लागू न होकर उनके सापेक्ष प्रत्ययों पर लागू होता है। हीगेल के अनुसार सर्वप्रथम मनुष्य के मस्तिष्क में विरोधी प्रत्ययों में संघर्ष होता है और बाहरी इतिहास उन संघर्षों की छाया है।

भौतिकवादी होने के नाते कार्लमार्क्स प्रत्यय को गौण और पदार्थ को प्रधान मानता है। वह मनुष्य के सम्पूर्ण इतिहास को बाहरी प्रकृति और समाज में देखता है हीगल और मार्क्स के द्वन्द्व सिद्धान्तों में प्रधान तत्व के रूप में केवल प्रत्यय और पदार्थ की भिन्नता है। यद्यपि दोनों का दार्शनिक दृष्टिकोण एक ही है। दोनों की समता इस बात में है कि वे द्वन्द्वात्मक प्रणाली को ही परिवर्तन का मूल आधार मानते हैं।

द्वन्द्व-सिद्धान्त की यह समता सत्य के गत्यात्मक रूप का दर्शन कराती है। हीगल के लिए सत्य प्रत्यय में है तो मार्क्स के लिए जीवन की भौतिक परिस्थितियों में। जर्मन दार्शनिक फायरबाख स्वयं को न तो भौतिकवादी मानता था और न आदर्शवादी किन्तु उसके दर्शन में कुछ अंश ऐसे हैं जो भौतिकवादी हैं और जिनसे मार्क्स प्रभावित था। फायरबाख के अनुसार मनुष्य ही उसके दर्शन का केन्द्र बिन्दु है और वही समूची सांस्कृतिक परम्परा का केन्द्र बिन्दु है।

फायरबाख के भौतिकवाद से मार्क्स का भौतिकवाद कई अर्थों में भिन्न है। आदर्शवादियों की तरह मार्क्स यह नहीं मानता कि मनुष्य की चेतना (प्रत्यय) ही सब कुछ है और जड़ पदार्थ उसकी छाया है और न ही भौतिकवादियों की तरह यह मानता है कि जड़ पदार्थ ही सब कुछ है और मानव चेतना केवल निष्क्रिय अनुभवों की भोक्ता है। मार्क्स के अनुसार चेतना और बाह्य परिस्थितियों में संघर्ष होता है। यह संघर्ष निश्चित भौतिकवादी परिस्थितियों में जन्म लेता है। इसलिए मनुष्य को समझने के लिए उसी ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन आवश्यक है। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मनुष्य को उसकी ठोस परिस्थितियों की सापेक्षता में देखता है और उनके आन्तरिक संघर्षों के अनुसार ही उनके परिवर्तन को स्वीकार करता है। इस तरह सृष्टि और प्रकृति का यह दृष्टिकोण चेतना और पदार्थ के समन्वित रूप को व्यक्त करता है।

15.3.2. ऐतिहासिक भौतिकवाद

ऐतिहासिक भौतिकवाद मनुष्य के इतिहास और समाज के विकास के संदर्भ में कार्ल मार्क्स के विशिष्ट सामाजिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। इसे सर्वप्रथम कार्लमार्क्स ने अपने लेखों में व्यक्त किया था। ऐतिहासिक भौतिकवाद मनुष्य के इतिहास और समाज की एक विशिष्ट व्याख्या-पद्धति है। इसके अनुसार मनुष्य का सामाजिक जीवन उसकी आर्थिक, राजनीतिक और भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा अनुशासित होता है। इन परिस्थितियों में आर्थिक परिस्थितियों का विशेष प्रभाव रहता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद में इतिहास की रहस्यात्मक शक्तियों का कोई महत्व नहीं है। इस तरह कार्लमार्क्स के मूल दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की तरह ऐतिहासिक भौतिकवाद का दृष्टिकोण भी पदार्थवादी अर्थात् भौतिकवादी ही है। अतः द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सामाजिक विचार को ही ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा जाता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद जीवन की भौतिक परिस्थितियों पर ही जोर देता है। भौतिक परिस्थितियों से तात्पर्य सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों से है। इनमें भी मनुष्य के चरित्र-निर्माण में आर्थिक परिस्थितियों की विशेष भूमिका होती है। ऐतिहासिक

भौतिकवाद के अनुसार जीवन-यापन के लिए जो साधन हैं और जिनके उपार्जन के लिए जिस उत्पादन प्रणाली की आवश्यकता है, वही हमारे समूचे सामाजिक अस्तित्व को अनुशासित करती है। प्रत्येक मनुष्य के जीने के लिए भोजन और अन्य सामाजिक वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इनके उत्पादन के औज़ार, जनता और उत्पादन शक्ति के संयोग से ही उत्पादन शक्तियों का जन्म होता है। साथ ही, उत्पादन के सम्बन्ध में मनुष्य एक-दूसरे के निकट आता है जिससे आर्थिक मानवीय सम्बन्धों की सृष्टि होती है। इस प्रकार उत्पादन प्रणाली और मानवीय सम्बन्धों से ही समाज का इतिहास निर्मित होता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद को निम्नलिखित सूत्रों से समझा जा सकता है -

1. मनुष्य का सामाजिक जीवन अपनी आर्थिक परिस्थितियों से विशेष रूप से अनुशासित होता है।
2. उत्पादन के साधन (यंत्रादि), जनता और उत्पादन शक्तियों से ही उत्पादन की शक्तियाँ निर्मित होती हैं जो समाज के ढाँचे को प्रभावित करती हैं।
3. कोई भी सामाजिक व्यवस्था स्थायी नहीं होती उसमें परिवर्तन होता रहता है क्योंकि उत्पादन निरन्तर गतिशील है। इसलिए मनुष्य विभिन्न युगों में विभिन्न प्रकार की उत्पादन-प्रणाली की रचना करता है।
4. उत्पादन के समूचे परिवर्तन उत्पादन शक्तियों के परिवर्तन के नाते होते हैं जिनका प्रभाव मनुष्य के आर्थिक सम्बन्धों और सामाजिक व्यवस्था पर भी पड़ता है। फलतः सामाजिक विकास में इन दोनों की अन्तःक्रियाएँ चलती रहती हैं।
5. उत्पादन और उत्पादन शक्तियों में परिवर्तन के कारण मानव समाज में अबतक निम्नलिखित प्रकार की सामाजिक व्यवस्था स्थापित हो चुकी है।

1. प्रारम्भिक साम्यवाद
2. दास व्यवस्था
3. सामन्तवाद
4. पूंजीवाद
5. समाजवाद

नोट - यहाँ छठी अवस्था के रूप में उदारीकृत आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत भूमण्डलीकृत सामाजिक व्यवस्था को भी सम्मिलित किया जा सकता है जो पिछले दो दशक से निर्माण की ओर अग्रसर है।

6 . ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार मानव समाज का इतिहास निश्चित नियमों से परिचालित है। यही इतिहास की मूलभूत एकता और गत्यात्मकता का कारण है।

7. आर्थिक व्यवस्था के अनुरूप ही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था की रचना होती है।

15.4 मार्क्सवाद के प्रमुख तत्व

मार्क्सवादी विचारधारा के निम्नलिखित प्रमुख तत्व हैं -

1 . **साम्यवाद** - साम्यवाद (कम्युनिज़्म) मार्क्सवादी विचारधारा की प्रमुख अवधारणा है। व्यक्ति विशेष के बदले सामूहिक रूप से सार्वजनिक उत्पादन, प्रबन्धन और उपभोग के सिद्धान्त पर आधारित समाज व्यवस्था साम्यवादी समाज-व्यवस्था कहलाती है। इस विचारधारा का चरम विकास मार्क्सवाद में हुआ। साम्यवादी, समाज में शोषक (पूँजीपति) और शोषित (श्रमिक), बुर्जुआ (आभिजात्य) और सर्वहारा (सामान्यजन)-इन दो वर्गों की सत्ता मानता है। साम्यवाद की स्थापना में इन दोनों वर्गों में संघर्ष अनिवार्य है। वर्ग-संघर्ष और क्रान्ति के द्वारा साम्यवाद की स्थापना होती है। अतः मार्क्स ने सर्वहारा वर्ग को संगठित होने पर विशेष जोर दिया है। क्रान्ति का समर्थन, शोषित वर्ग को मज़बूत करने तथा शोषक वर्ग का विरोध करने वाला साम्यवादी प्रगतिशील कहलाता है।

2 . **वर्ग-संघर्ष**- मार्क्स के अनुसार समाज मुख्य रूप से दो वर्गों में बँटा हुआ है - शोषक वर्ग और शोषित वर्ग। इन वर्गों की आर्थिक आवश्यकताएँ भिन्न हैं जिनके अनुरूप इनकी सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक परम्पराएँ और स्वार्थ हैं। वर्गों की विषमता के फलस्वरूप और अपने-अपने वर्गीय स्वार्थों के कारण इन दो वर्गों में प्रायः संघर्ष होता है। साम्यवादी समाज की स्थापना में मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष को स्वाभाविक और अनिवार्य तत्व माना है जिसकी चरम परिणति क्रान्ति में होती है।

3 . **वर्गहीन समाज**- मार्क्स के अनुसार जब उत्पादन के साधनों पर सामूहिक नियंत्रण होता है तब समाज में शोषक या शोषित कोई वर्ग नहीं रहता। फलतः वर्गहीन समाज में शोषण भी नहीं होता। शोषण से मुक्त समाज वर्गहीन समाज कहलाता है। मार्क्स वर्गहीन समाज के दो रूप मानता है- प्रारम्भिक समाज जिसमें मनुष्य का इतिहास प्रारम्भ होता है, और साम्यवादी समाज, जिसकी रचना पूँजीवाद के उपरांत हुई। इसमें प्रथम समाज आदिम रूप होने के कारण कम विकसित तथा दूसरा आर्थिक ओर सामाजिक दृष्टि से अधिक विकसित है।

4 . क्रान्ति- मार्क्स ने क्रान्ति को परिवर्तन का महत्वपूर्ण और अनिवार्य साधन माना है। शोषक और शोषित वर्गों के बीच उपजे वर्ग-संघर्ष की चरम परिणति क्रान्ति में होती है। क्रान्ति से ही शोषण का अंत होता है। शोषित वर्ग का संगठन और शोषक का विरोध क्रान्ति के लिए आवश्यक है। इसलिए मार्क्स ने नारा दिया- 'संसार के श्रमिकों एक हो जाओ क्योंकि तुम्हें अपनी गुलामी के सिवाय और कुछ नहीं खोना है।' क्रान्ति के संदर्भ में समाजवादी और साम्यवादी के दृष्टिकोण में पर्याप्त अंतर है। समाजवादी प्रायः शान्तिमय तथा लोकतांत्रिक उपायों से क्रान्ति के पक्ष में है। इसके विपरीत साम्यवादी व्यवस्था परिवर्तन के लिए सशक्त क्रान्ति का समर्थक है। वे समाजवाद को क्रान्ति का प्रथम सोपान और साम्यवाद को क्रान्ति का अंतिम सोपान मानते हैं। रूस में हुई साम्यवादियों की सशस्त्र क्रान्ति इसका उदाहरण है।

5 . सर्वहारा वर्ग- मार्क्स के अनुसार समाज में दो मुख्य वर्ग हैं -शोषक और शोषित। शोषित वर्ग ही सर्वहारा वर्ग है जिसमें श्रमिक, मजदूर, भूमिहीन किसान-मजदूर आते हैं। मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन में सर्वहारा वर्ग की भूमिका को महत्वपूर्ण माना है क्योंकि उसके अनुसार सर्वहारा वर्ग ही क्रान्ति कर सकता है जो सामाजिक परिवर्तन के लिए आवश्यक है। सर्वहारा वर्ग ही परिवर्तन के लिए शक्ति, साहस और बुद्धि रखता है। वह परिवर्तन की आकांक्षा भी रखता है।

15.5 मार्क्सवादी हिन्दी साहित्य

मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित हिन्दी साहित्य 'प्रगतिवादी साहित्य' कहलाता है जिसका रचनाकाल छायावाद के पतन के बाद 'प्रगतिवादी युग' अथवा 'प्रगतिवाद' के नाम से प्रतिष्ठित है। हम कह सकते हैं कि मार्क्सवाद का साहित्यिक रूपांतर हिन्दी में 'प्रगतिवाद' है, ठीक उसी तरह जिस तरह राजनीति में मार्क्सवाद को साम्यवाद के रूप में जाना जाता है। प्रगतिवाद की मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से विकसित हुई है। हिन्दी साहित्य में यह साम्यवादी आदर्शों से प्रेरित वह आन्दोलन है जिसने समस्त साहित्यिक चेतना को सामाजिक यथार्थ की ओर अग्रसर किया। मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को प्रतिष्ठित करना प्रगतिवादी साहित्य का मुख्य लक्ष्य था। इसका उद्देश्य था जनवादी शक्तियों को संगठित करके मार्क्सवाद के आधार पर निर्मित नये मूल्यों की साहित्य में प्रतिष्ठा करना। 'प्रगतिवाद की आत्मा साम्यवाद में थी, दृष्टि रूस के साहित्यिक इतिहास की ओर थी, प्रेरणा राजनीतिक मंतव्यों द्वारा अनुशासित थी। उसकी खोज सर्वहारा के रूप में उस नये मानव की थी जो समस्त पतनशील प्रवृत्तियों के विरोध में उपर्युक्त स्थापनाओं को विकसित कर सके। इसकी साहित्यिक चेतना सैद्धान्तिक रूप से प्रगतिशील थी। इसलिए साहित्यिक आन्दोलन को 'प्रगतिशील आन्दोलन' के नाम से भी जाना जाता है। प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि - देश-काल की बदलती परिस्थितियों के दबाव के फलस्वरूप जीवन के प्रति दृष्टिकोण भी बदलता है जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में एक नये आन्दोलन के रूप में दिखाई पड़ती है। प्रगतिवाद की स्थापना में भी राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर तेजी से बदलती परिस्थितियों की

महत्वपूर्ण भूमिका है। देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के प्रभाव से तेजी से बदल रही थीं। स्वतंत्रता आन्दोलन में गांधी जी के अहिंसा-सत्याग्रह सिद्धान्तों से युवा पीढ़ी के उग्र विद्रोह की अभिव्यक्ति नहीं हो पा रही थी। फलतः देश में असंतुष्ट युवा वर्ग तेजी से उभर रहा था। विश्व में साम्यवाद के उभरते 'क्रान्तिकारी प्रभाव के फलस्वरूप सन् 1934 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी का जन्म हुआ जिसने किसान-मजदूर के संगठनों पर जोर दिया। राजनीति में कम्युनिस्ट पार्टी के उदय के साथ ही वामपंथी शक्तियों का प्रभाव बढ़ने लगा मजदूर-आन्दोलन तेज हो उठे। रूस में साम्यवाद को व्यापक जनस्वीकृति मिल चुकी थी। सामंतवादी और पूंजीवादी विभीषिकाओं को कुचलकर सर्वहारा वर्ग नये अधिनायक के रूप में स्थापित हो चुका था। देश में राजनीतिक दासता के चलते पूंजीवादी और सामंतवादी शक्तियों के बढ़ते शोषण से देश की आम जनता भयावह गरीबी, अशिक्षा और भूख से पीड़ित थी। द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी और बंगाल के अकाल ने उसे और भयानक बना दिया।

इन सब परिस्थितियों से साहित्य जगत कैसे अछूता रह सकता था? तत्कालीन छायावाद की अति वैयक्तिक सूक्ष्म कल्पनाएँ और रूमानी वासनाओं में रमने वाली कविताएँ युग के अनुकूल नहीं पड़ रही थीं। छायावादी काव्य अलंकृत संगीत होकर रह गया था। स्वप्नों में रमने वाली उसकी आत्मा मानों सहमी-सहमी थी। छायावाद धीरे-धीरे अपने पतन की ओर बढ़ रहा था। सन् 1936 में 'भारतीय प्रगतिशील आन्दोलन' की स्थापना हुई। प्रेमचन्द इसके प्रथम अधिवेशन के सभापति हुए। प्रेमचन्द गोर्की साहित्य के साम्यवादी दर्शन से प्रभावित होकर अपने उपन्यासों में इसकी अभिव्यक्ति करने लगे थे। सन् 1937 में शिवदान सिंह चौहान ने 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक लेख लिखा। इसमें इन्होंने हिन्दी के कवि-लेखकों को ललकारा-''हमारा साहित्यिक नारा कला, कला के लिए नहीं वरन कला-संसार को बदलने के लिए है।'' अतः साहित्य किसके लिए और किसलिए? जैसे प्रश्न महत्वपूर्ण हो उठे। इन प्रश्नों ने भी छायावादी कवियों को आत्मचिंतन के लिए बाध्य किया। छायावाद के प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पंत ने स्वीकार किया-''छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा क्योंकि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावनाओं का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था।'' कोई भी आयातित विचारधारा किसी देश में एकाएक आन्दोलन नहीं बन जाती। उसे अनुकूल परिस्थितियों में पनपने और विकसित होने में समय लगता है। प्रगतिवाद मार्क्सवाद से प्रेरित एक वैचारिक आन्दोलन था। उसके विकास की प्रारम्भिक अवस्था छायावादोत्तर काल में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता में देखी जा सकती है। इसी समय पंत और निराला जैसे छायावादी कवि भी प्रगतिशील कविताएँ लिखने लगे थे। पंत की 'युगवाणी' और निराला का 'कुकरमुत्ता' प्रगतिशील काव्य संग्रह है। इसी के साथ केदारनाथ अग्रवाल (युग की गंगा), नागार्जुन (युगधारा), त्रिलोचन (धरती), शिवमंगल सिंह सुमन (प्रलय, सृजन) प्रगतिवाद के कवि हैं। रांगेव-राघव, मुक्तिबोध,

भारतभूषण अग्रवाल और रामविलास शर्मा ने कविता के साथ ही गद्य विधाओं में भी प्रगतिवादी साहित्य की रचना की।

सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का साहित्य का मुख्य उद्देश्य मानने के कारण प्रगतिवादी साहित्य अपनी संवेदना में जनवादी है। इसमें जन-सामान्य के कटु यथार्थ, संघर्ष, आर्थिक विषमता, शोषण आदि की प्रभावशाली अभिव्यक्ति हुई है। सामंत, सत्ता और पूँजीपतियों के पाखण्ड, शोषण, दमन के विरुद्ध उग्र तेवर और संगठित विद्रोह द्वारा परिवर्तन की उद्दाम आकांक्षा प्रगतिवादी साहित्य के मुख्य संस्कार हैं। प्रगतिवादी कवियों के कतिपय काव्य उदाहरणों में प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों के संकेत देखे जा सकते हैं -

काटो काटो काटो काटो , साइत और कुसाइत क्या है।

मारो मारो मारो मारो , हिंसा और अहिंसा क्या है ॥ -केदारनाथ अग्रवाल

तुम भी रणचंडी बन जाओ

मैं क्रान्ति कुमार का अनुचर। - शिवमंगल सिंह 'सुमन'

फिर वह एक हिलोर उठी, गाओ।

वह मजदूर-किसानों के स्वर कठिन हठी

कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ !

उनके मिट्टी के तन में है अधिक आग, है अधिक ताप,

उनमें कवि हे! अपने विरह-मिलन के पाप जलाओ !

काट बुर्जुआ भावों की गुमठी को, गाओ। - शमशेर बहादुर सिंह

घुन खाए शहतीरों पर की बारह खड़ी विधाता बाँचे,

फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे,

बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट पर पाँच तमाचे,

इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे। - नागार्जुन

प्रगतिवादी कवियों ने साहित्य की संवेदना के साथ ही उसकी भाषा को भी छायावादी रंगीन कोहरे से निकालकर जनजीवन से जोड़ा। प्रगतिवादी कवियों ने जन सामान्य में

प्रचलित भाषा को ही अपनाया। प्रतीक, मुहावरे, बिम्ब, चित्र, काव्य-शैली आदि सभी जन-जीवन से ही लिए गए हैं। सर्वहारा वर्ग के प्रतीक को व्यक्त करता केदारनाथ अग्रवाल का एक प्रकृति चित्र दृष्टव्य है -

एक बीते के बराबर, यह हरा ठिगना चना बाँधे मुँठे शीश पर, छोटे गुलाबी फूल का
सजकर खड़ा है !

साधारण जन और साधारण प्रकृति का साहचर्य प्रगतिवादी कवियों की काव्य-क्षमता की प्रमुख शक्ति है। इसी तरह के एक अन्य चित्र में परिवार और प्रकृति रागात्मक रूप से सम्पृक्त होकर प्रभावशाली बन पड़े हैं -

धूप चमकती है चाँदी की साड़ी पहने मैके में आई बेटि की तरह मगन है !

भाषा-शैली की दृष्टि से प्रगतिवादी कविताओं में प्रारम्भ के दौर में अभिधात्मक शैली की प्रधानता के कारण सपाट बयानी अधिक है। यह प्रवृत्ति प्रगतिवाद के आखिरी दौर तक देखी जा सकती है। फलतः प्रगतिवादी काव्य में कलात्मक सौन्दर्य का अभाव रहा है। समीक्षा - प्रगतिवाद की शक्ति मुख्यतः पुरातन आदर्शवादी मनोवृत्ति को सामाजिक यथार्थ की ओर प्रवृत्त करने तथा छायावादी आध्यात्मिक मूल्यों के स्थान पर भौतिकवादी मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में लगी रही। आर्थिक और वर्ग-संघर्ष मूलक सामाजिक सम्बन्धों को प्रमुखता देकर प्रगतिवाद ने हिन्दी साहित्य में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण अध्याय जोड़ा। अपनी सीमाओं के कारण हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद अत्यंत अल्पजीवी ही रहा। प्रगतिवाद के पतन अथवा अवसान का मुख्य कारण था-भारत की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना से उसका एकात्म न हो पाना। हिन्दी के अधिकांश प्रगतिशील लेखक/कवि प्रायः उस जन-जीवन से दूर रहे हैं जो उनकी काव्य का मुख्य प्रेरणा-स्रोत हैं। इसलिए प्रगतिवादी साहित्य मार्क्सवाद का प्रचार साहित्य बन कर रह गया। प्रगतिवाद के पतन पर डॉ० नगेन्द्र की यह टिप्पणी अधिक तर्क संगत लगती है - "प्रगतिवादी साहित्य प्रचार बनकर रह गया। सामाजिक जीवन की संश्लिष्ट वास्तविकताओं से कटकर केवल सिद्धांत का प्रचार करने का परिणाम यह हुआ कि कवि अपने परिवेश से सम्बद्ध न रहकर पहले लाल सेना और लाल रूस का फिर बाद में लाल चीन का गीत गाने लगा। प्रचार का एक दूसरा खतरा यह हुआ कि कवियों ने जन-जीवन से अपने को सम्बद्ध किये बिना जन-जीवन का गीता गाना शुरू किया। अतः अनुभव के स्थान पर फार्मूला, कविताओं की प्रेरणा बना।"

15.6 मार्क्सवाद और हिन्दी समालोचना

मानवीय स्वतंत्रता एवं अस्तित्व को लेकर उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय साहित्य में विचार और संवेदना के स्तर पर क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन का श्रेय मार्क्सवाद को है जिसमें

सर्वहारा वर्ग के अस्तित्व को प्रतिष्ठित करने का प्रबल आग्रह दिखाई पड़ता है। इस आग्रह के पीछे मुख्य रूप से औद्योगिकीकरण की कटुता और पूँजी के असमान वितरण से उत्पन्न सामाजिक मूल्यों का छिन्न-भिन्न हो जाना है। मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित हिन्दी समालोचना को 'प्रगतिवादी समालोचना' के नाम से जाना जाता है। प्रगतिवादी समालोचना का मूल आधार मार्क्सवादी चिन्तन है। जैसाकि पूर्व में उल्लेख किया गया है कि भारत में सन् 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के साथ ही मार्क्सवाद को लेकर एक नवीन चिन्तन-पद्धति का जन्म हो चुका था। हिन्दी जगत भी इससे अछूता न रह सका। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिशील लेखकों व कवियों की रचनाएँ सामने आने लगीं थीं। इन्हीं रचनाओं के साथ सैद्धान्तिक मूल्यांकन की दृष्टि में भी बदलाव आया। फलतः प्रगतिवादी समालोचना के अन्तर्गत आलोचना के नए प्रतिमान स्थापित हुए। प्रगतिवादी समालोचना का मूल आधार जनवादी मूल्यों (जिनका सम्बन्ध मार्क्सवादी यथार्थवाद से है) की स्थापना है। सैद्धान्तिक रूप से इसकी साहित्यिक नीति उपयोगितावादी है अतः इसमें आभिजात्य कला रुचियों, संस्कारों और भावनाओं के प्रति विरोध ही नहीं अपितु आक्रोशपूर्ण विद्रोह भी है। संक्षेप में, प्रगतिवादी हिन्दी समालोचना की सैद्धान्तिक मान्यताओं को मार्क्सवादी चिन्तन के अनुरूप निम्नलिखित बिन्दुओं से समझा जा सकता है -

1. आनन्द साहित्य का लक्ष्य नहीं, वह साधन मात्र है।
2. परिवर्तन और क्रान्ति के लिए प्रेरणा और उत्साह का संचार करना ही साहित्य का उद्देश्य है
3. केवल सुन्दर पक्ष का उद्घाटन लेखक की पूँजीवादी प्रकृति का द्योतक है।
4. साहित्य में मानव सापेक्ष सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को प्राथमिकता।
5. कोमल और आलंकारिक भाषा का प्रयोग, चमत्कारपूर्ण ऊहात्मक शैली को प्रगतिवादी समीक्षा में सामाजिक हास का प्रतीक बताया गया है।

मार्क्सवादी अथवा प्रगतिवादी हिन्दी समालोचकों में शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, प्रकाशचंद गुप्त, मन्मथनाथ गुप्त, अमृत राय आदि उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों ने प्रगतिवादी मूल्यों के सैद्धान्तिक पक्ष का विवेचन करते हुए प्रगतिवादी समालोचना के नए प्रतिमान प्रस्तुत किये। मार्क्सवादी समालोचक शिवदान सिंह चौहान ने सर्वप्रथम सन् 1937 में 'विशाल भारत' में 'भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' शीर्षक लेख लिखकर प्रगतिवादी आलोचना की नींव डाली। 'प्रगतिवाद' (1946), 'साहित्य की परख' (1948), 'आलोचना के मान' (1958), 'साहित्य की समस्याएँ' (1959), 'साहित्यानुशीलन' उनके प्रमुख समालोचना ग्रन्थ हैं। इनमें लेखक ने मार्क्सवादी आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष को स्पष्ट करने के साथ ही हिन्दी साहित्य को उसकी कसौटी पर यथासम्भव संतुलित ढंग से परखने का प्रयास किया है। प्रकाश चन्द गुप्त दूसरे उल्लेखनीय समालोचक हैं। 'नया हिन्दी साहित्य' (1946), 'आधुनिक हिन्दी साहित्य'

(1950), तथा 'हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा' (1953) उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इनमें सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण विवेचन सामान्य होकर रह गया है। मार्क्सवादी समालोचकों में रामविलास शर्मा की समालोचना दृष्टि सबसे अधिक पैनी और स्पष्ट है। 'प्रगति और परम्परा' (1948), 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ' (1954), 'आस्था और सौन्दर्य' (1956) आदि उनके उल्लेखनीय समालोचना निबन्धों के संग्रह हैं। वर्ग-भेद पर आधारित समाज की पहचान को उन्होंने साहित्यकारों के लिए आवश्यक माना है। कहीं-कहीं वर्ग-भेद पर अधिक जोर देने के कारण उनकी समीक्षा शैली अतिवाद का शिकार होकर विकृत हो गयी है। अन्य उल्लेखनीय समालोचकों में अमृत राय (नयी समीक्षा) और नामवर सिंह ('इतिहास और आलोचना, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ') प्रमुख हैं।

15.7 सारांश

मार्क्सवाद प्रसिद्ध विचारक कार्ल मार्क्स (सन् 1818-1883 ई ः) की देन है। मार्क्सवादी चिन्तन ने विश्व में साहित्य, समाज, अर्थनीति और राजनीति को गहरे प्रभावित किया और चिन्तन के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। मार्क्सवाद का मूल दर्शन है -द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद। द्वन्द्व सिद्धान्त की उत्पत्ति की प्रेरणा वस्तुतः प्राचीनकाल में ग्रीस में प्रचलित वाद-विवाद परम्परा से मिली थी जिसमें लोग वाद-विवाद के द्वारा सत्य का अन्वेषण करते थे। उनका मानना था कि सत्य की उत्पत्ति दो विरोधी बातों के संघर्ष से होती है। इस पद्धति को सर्वप्रथम प्रत्ययवादी विचारक हीगेल ने ग्रहण किया और 'द्वन्द्वात्मक परिवर्तन पद्धति' की स्थापना की। हीगेल का विचार था कि मनुष्य का सम्पूर्ण विकास दो विरोधी तत्वों के संघर्ष से हुआ है। सत्य का कोई रूप निश्चित नहीं होता। परिवर्तन मात्र सत्य है। हीगेल का 'परिवर्तनत्रयी' का सिद्धान्त मनुष्य के विचारों और चेतना के स्तर तक सीमित था।

जर्मन दर्शनिक फायरबाख (सन् 1804-1872) ने प्रत्यय (चेतना) की अपेक्षा पदार्थ को महत्व दिया। उसके अनुसार भौतिक पदार्थ ही सत्य है और विचार उसकी छाया है। इस तरह हीगेल और फायरबाख के चिन्तन को समन्वित करके कार्ल मार्क्स ने 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' की स्थापना की। कार्ल मार्क्स का मानना है कि सृष्टि में परिवर्तन शाश्वत है। अतः परिवर्तन ही सत्य है। परिवर्तन भी निश्चित नियमों के अनुसार होता है। ये नियम सभी देशकाल में समान हैं। परिवर्तन का आधारभूत कारण द्वन्द्व अर्थात् संघर्ष है। संघर्ष से ही विकास होता है।

15.8 शब्दावली

द्वन्द्व	-	दो वस्तुओं या व्यक्तियों में संघर्ष
गौण	-	कम महत्व का

गत्यात्मक	-	गतिशील
प्रत्यय	-	चेतना
भोक्ता	-	भोगनेवाला
भौतिकवादी	-	पदार्थ को प्रधान मानने वाला
परिवर्तनत्रयी	-	परिवर्तन के तीन प्रकार
सर्वहारा	-	सभी प्रकार से हीन अवस्था को प्राप्त

15.9 सहायक ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य कोश (भाग-1): संपा0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास: संपा0 डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. प्रगतिवाद की रूपरेखा: मन्मथनाथ गुप्त, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
4. प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन : हंसराज रहबर, नवयुग प्रकाशन, दिल्ली।
5. हिन्दी की मार्क्सवादी कविता: सम्पत ठाकुर, प्रगति प्रकाशन, आगरा।
6. हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद: विजयशंकर, सरस्वती मंदिर, जतनवर, बनारस।
7. प्रगतिवाद की रूपरेखा: शिवचंद, किताबमहल, इलाहाबाद।
8. प्रगतिवाद एवं समीक्षा: धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए। तथा कार्लमार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर हीगल और फायरबाख के द्वन्द्व दर्शन के प्रभाव की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।
2. मार्क्सवाद के प्रेरणा-स्रोतों पर प्रकाश डालते हुए ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या कीजिए

इकाई 16 आधुनिकतावाद, उत्तर-आधुनिकतावाद

- 16.1 प्रस्तावना
- 16.1 उद्देश्य
- 16.3. आधुनिकतावाद: अर्थ एवं स्वरूप
 - 16.3.1 आधुनिकतावाद: पृष्ठभूमि एवं वर्गीकरण
 - 16.3.2 आधुनिकतावाद और हिन्दी साहित्य
- 16.4 उत्तर-आधुनिकता क्या है?
 - 16.4.1 उत्तर- आधुनिकता की प्रस्तावना
 - 16.4.2 उत्तर-आधुनिकता के मुख्य बिन्दु
 - 16.4.3 आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता
 - 16.4.4 उत्तर-आधुनिकता के विभिन्न मत
 - 16.4.5 उत्तर-आधुनिकता और हिन्दी साहित्य
 - 16.4.6 उत्तर-आधुनिकता की सीमा
 - 16.4.7 उत्तर-आधुनिकता का प्रदेय
- 16.5 सारांश
- 16.6 शब्दावली
- 16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
- 16.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से पूर्व में आपने साहित्यशास्त्र एवं हिन्दी आलोचना एवं पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्त का अध्ययन किया। भारतीय साहित्यशास्त्र में आपने विभिन्न आलोचना सिद्धान्त जैसे रस क्या है, काव्य का प्रयोजन क्या है, काव्य के हेतु कौन-कौन से हैं तथा रस, अलंकार, ध्वनि, औचित्य, वक्रोक्ति, रीति जैसे काव्य सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इसके पाश्चात्य आपने पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की परम्परा को पढा .

इसी क्रम में इस इकाई में आप आधुनिकतावाद तथा उत्तर-उत्तरआधुनिकतावाद की सैद्धान्तिकी का अध्ययन करेंगे और जानेंगे कि आधुनिकतावाद, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से युक्त विचारधारा है। औद्योगिकीकरण के पश्चात् मध्यकालीन जीवन दर्शन एवं मूल्यों की प्रतिक्रिया में आधुनिकतावाद के विचारों का उदय हुआ।

उत्तर-आधुनिकता को लेकर अभी भी भ्रम की स्थिति बनी हुई है। इस इकाई में आप आधुनिकतावाद एवं उत्तर-आधुनिकतावाद के महत्वपूर्ण सूत्रों को समझेंगे।

16.2 उद्देश्य -

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप -

आधुनिकता की पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

आधुनिकता के विभिन्न मतों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

आधुनिकता और उत्तर -आधुनिकता के भेद को समझ सकेंगे।

उत्तर -आधुनिकता के अर्थ, तात्पर्य को समझ सकेंगे।

उत्तर-आधुनिकता के तर्क, विचार एवं सिद्धान्त की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

उत्तर -आधुनिक हिन्दी साहित्य से परिचित हो सकेंगे।

16.3. आधुनिकतावाद: अर्थ एवं स्वरूप

आधुनिकतावाद वह दर्शन था जिसने स्वीकृत पुराने सारे प्रतिमानों एवं मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगाया। यह विश्वास की जगह तर्क एवं भाव की जगह बुद्धि पर केन्द्रित है। आधुनिकतावाद के मूल शब्द आधुनिक आंग्ल भाषा के मॉडर्निटी का हिन्दी रूपान्तरण है, जो स्वयं लैटिन भाषा के Modernus शब्द से उत्पन्न है। आधुनिक शब्द 'अधुना' अव्यय से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ

है- 'हाल का', 'इस समय', 'वर्तमान', इत्यादि। साधारणतया आधुनिकता का अर्थ वर्तमान से है। आधुनिकता का एक अर्थ प्राचीनता का विरोध है। इस तर्क के अनुसार प्राचीन मान्यताओं से विपरीत आधुनिकता विवेकजन्य, तर्कयुक्त वर्तमान का बोध है। इस विचारधारा का निर्माण मनुष्य ने अपनी तार्किकता के आधार पर किया है। प्राचीनता जहाँ प्रथाओं एवं मान्यताओं का अतार्किक अनुपालन है वहीं आधुनिकता मान्यताओं व नियमों के बौद्धिक एवं तार्किक परीक्षण से विकसित होती है। एडनर्ड शिल्स के अनुसार तार्किक बौद्धिकता ही आधुनिक समाज को प्राचीन से पृथक करती है। आधुनिक समाज में मनुष्य की विवेकशक्ति द्वारा वर्तमान समाज के बौद्धिक पुनर्गठन का नाम है आधुनिकता। बौद्धिक पुनर्गठन के परिणाम स्वरूप ही आधुनिक युग में अनेक वैज्ञानिक आविष्कार हुए। आइंस्टीन के सापेक्षतावाद ने सिद्ध कर दिया कि सत्य सापेक्ष होता है। वैज्ञानिक कार्य-कारण पद्धति ने ईश्वर के स्थान पर व्यक्ति को स्थापित कर दिया। कृष्ण कुमार ने औद्योगीकरण को आधुनिक समाज की मुख्य पहचान बताया है। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में परिवर्तन का आधारभूत कारण वैज्ञानिक आविष्कार ही है। इस दृष्टि से कृष्ण कुमार ने आर्थिकता को आधुनिकता की केन्द्रीय प्रवृत्ति माना है। मार्क सोलोमन ने भी कृषि-प्रधान समाज से औद्योगिक शहरों में परिवर्तन होने को आधुनिकता कहा है। आधुनिकता की एक निष्पत्ति 'व्यक्तिवाद की विजय' में हुई है। जान नाएसबिट एवं पेट्रिसा एबरडेन्स ने 'व्यक्ति' को आधुनिकता का मुख्य विषय माना है। प्राचीन समाज का व्यक्ति जहाँ अलौकिक आस्थाओं एवं चमत्कारों में विश्वास करता था, वहीं आधुनिक व्यक्ति इन सभी बंधनों से मुक्त हुआ। अतः आधुनिकता वह विचारधारा है जो व्यक्ति एवं उसके लौकिक जीवन को महत्वपूर्ण मानता है। टालकट पार्सन्स तथा राल्फ दारेनदोरफ ने आधुनिकता को संगठनात्मक-संरचनाकरण से जोड़ कर विश्लेषित किया है। उनके अनुसार आधुनिकता वही प्रक्रिया है जो सम्पूर्ण समाज की संरचना की पुनर्गठन की माँग करती है। पार्सन्स का कहना है कि नौकरशाही का व्यवस्थित संगठनात्मक स्वरूप, अर्थ का व्यवहार, सार्वभौमिक-विधिक तथा लोकतांत्रिक व्यवस्था इत्यादि द्वारा आधुनिकता को निर्धारित किया जा सकता है। दारेनदोरफ के अनुसार आधुनिकता अपने समग्र रूप में एक नवीन जीवन शैली को इंगित करती है। इस प्रकार भौतिकवादी, बुद्धिवादी, धर्मनिरपेक्षता, व्यक्ति केन्द्रित समाज, प्रशासनिक नौकरशाही व्यवस्था, वर्तमान एवं तर्क केन्द्रीयता आधुनिकता की पहचान माने जा सकते हैं।

बोध प्रश्न 1-

1. आधुनिकतावाद का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी प्रमुख विशेषता 10 पंक्तियों में लिखिए।
2. आधुनिकतावाद में बुद्धिवाद का क्या महत्व है। 10 पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

16.3.1 आधुनिकतावाद: पृष्ठ भूमि एवं वर्गीकरण

जैसा कि हमने अध्ययन किया, वैज्ञानिक कार्य-कारण पद्धति ने एक नवीन दृष्टिकोण को जन्म दिया, जिसे आधुनिकता कहा गया। आधुनिकता की कुछ मूलभूत मान्यताएँ थीं जैसे- मानववाद, बुद्धि, तर्क, वर्तमान, बोध, संरचना, इत्यादि। इसी क्रम में यहाँ हम आधुनिकता की अवधारणा को उसके प्रमुख मतों के संदर्भ में समझने की कोशिश करेंगे।

(1) **बुद्धिवाद** - बुद्धिवाद आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषता है। बुद्धिवाद का आधार तर्क है। यानी तर्क पर आधारित चिन्तन को बुद्धिवाद कहा गया है। इसकी मान्यता के अनुसार मानवीय बुद्धि ही सत्य की नियंता है। बुद्धिवाद के आरम्भ का संबंध पुनर्जागरण कालीन सुधारों से है। मध्यकालीन अवधारणा में वैचारिक ऊर्जा का स्रोत धर्म था, किन्तु आधुनिक काल में धर्म का स्थान तर्क ने ले लिया। विलियम ऑफ ऑक्कम, मार्टिन लूथर, केल्विन आदि सुधारवादी चिन्तकों ने बुद्धि द्वारा प्रेरित विचारों को प्रश्रय दिया। फ्रांसीसी दार्शनिक रेने देकार्त को 'आधुनिक बुद्धिवाद का जनक' माना जाता है। देकार्त ने तर्क के माध्यम से बुद्धि की है। देकार्त ने तर्क के माध्यम से बुद्धि की प्रतिष्ठा की। देकार्त के अनुसार वे सभी वस्तुएँ जो विचार की जा सकती हैं, केवल उन्हीं का अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है। इसी कारण देकार्त ने व्यक्ति/मानव का अस्तित्व स्वीकार किया। 'मेरा अस्तित्व है क्योंकि मे। सोच सकता हूँ' को बुद्धिवाद का आधार माना जाता है। इस चिंतन का सीधा अर्थ था कि चूँकि ईश्वर का अस्तित्व हमारे विचारों से परे है, इसलिए उसका अस्तित्व नहीं है। निकोलो मैकियावेली ने राजनीति एवं साहित्य के संदर्भ में बुद्धिवाद को प्रतिष्ठित किया। उसने कहा कि राज सत्ता किसी ईश्वरीय विधान द्वारा संचालित न होकर मनुष्य की बुद्धि द्वारा नियंत्रित होती है या हानी चाहिए। इसी क्रम में सुधारवादी चिन्तकों मार्टिन लूथर तथा केलिन का योगदान भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने चर्च तथा पोप गुरुओं के अनैतिक व घृणित कार्यों को अनावृत्त करके धर्मगुरुओं के प्रति जनमानस के अन्दर चेतना निर्मित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। मार्टिन लूथर ने धर्म तथा अध्यात्म को आन्तरिक अनुभव माना तथा किसके लिए किसी घोषित किया। केल्विन ने कहा कि धर्मग्रन्थों की रचना ईश्वरीय न होकर व्यक्तियों द्वारा की गई है। थॉमस हॉब्स के अनुसार यह सृष्टि एक यंत्र है जो यांत्रिक नियमों से संचालित होता है, न कि किसी ईश्वरीय सत्ता से। हॉब्स अध्ययन का विषय मानव प्रकृति को ही मानने पर बल देता है। हॉब्स ने कहा है कि बुद्धि से ही व्यक्ति की स्मरण-शक्ति, कल्पना शक्ति तथा विचार शक्ति उत्पन्न होती है। बुद्धियुक्त होने के कारण मनुष्य राज्य का निर्माण अपनी शान्ति के लिए समझौता सिद्धान्त द्वारा करता है। इस सिद्धान्त के नियमों का पालन तर्क सिखाता है।

उपर्युक्त आधुनिक बुद्धिवाद दर्शन का पूर्ण स्वरूप उदारतावादी विचारधारा में पया जाता है। उदारतावाद का बल बुद्धियुक्त व्यक्ति केंद्रित व्यवस्था की स्थापना पर था। उदारतावाद के प्रवर्तक जॉन लॉक के अनुसार प्रकृति के नियम मनुष्य की तर्क बुद्धि से संचालित होते हैं। लॉक तर्करहित

ईसाइयत की विचारधारा को अस्वीकार करता है। लॉक विचारों की उत्पत्ति को संवेदना तथा प्रत्यक्ष बोध से जोड़ता है। संवेदना तथा प्रत्यक्ष बोध को मनुष्य की बुद्धि द्वारा विश्लेषित किया जाता है। इस प्रकार लॉक विवक तथा अनुभव युक्त विचारधारा का समर्थन करता है। ग्रोशियस विवकेयुक्त व्यवहार का समर्थन करता है। वह मनुष्य की तर्क-शक्ति को ही संपूर्ण प्राकृतिक नियमों का आधार घोषित करता है। इस बौद्धिक-क्रान्ति को 'ज्ञानोदय' कहा गया। इस पर विचार करते हुए इमैनुएल कांट ने लिखा है- "ज्ञानोदय मनुष्य को उस दशा से मुक्ति दिलाता है जिसमें वह अपने-आप को बहुत छोटा समझने लगा है.... इसलिए नहीं कि उसमें ज्ञान की कमी है, बल्कि इसलिए कि उसमें अपने ही बल-बूते पर इस ज्ञान का प्रयोग करने के लिए संकल्प और साहस की कमी है।"

उपरोक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि आधुनिकता की स्पष्ट अवधारणा बुद्धिवादी तार्किकता में फलीभूत होती है।

(2) सार्वभौमिकतावाद

आधुनिकता की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता सार्वभौमिकतावाद है। सार्वभौमिकतावाद वह सिद्धान्त स्वीकार किया गया है जो तर्क व विज्ञान के नियम को प्रत्येक परिस्थितियों में समान रूप से लागू करने का पक्षधर है। सम्पूर्ण मनवीय समाज को इन नियमों के द्वारा बिना किसी अपवाद के समझा जा सकता है। सार्वभौमिकतावाद इस तथ्य पर आधारित है कि समस्त विश्व के व्यक्तियों की प्रकृति में एकरूपता है। अतः सम्पूर्ण विश्व एक ही सार्वभौमिक नियम के द्वारा संचालित है। सार्वभौमिकतावाद के तत्व सर्वप्रथम 'स्टोइक-दर्शन' में प्रस्फुटित हुए। स्टोइकवादियों का मानना था कि मनुष्य का विवक प्राकृतिक नियमों का प्रतिनिधि है। विवक पर आधारित नियम ही प्राकृतिक कानून है जो सुनिश्चित एवं सार्वभौमिक है। दर्शन के अनुसार मानव-मानव में कोई अन्तर नहीं है। तात्पर्य यह है कि एक ही बुद्धि सर्वत्र व्याप्त है तथा उसका प्रत्येक गतिविधियों पर सम्पूर्ण नियंत्रण है। इस विचारधारा द्वारा ही सर्वप्रथम सामनता, भ्रातृ-भावना, विश्व बंधुत्व और प्राकृतिक नियमों ने कहा है कि संसार में कोई भी वस्तु किसी दूसरी वस्तु के साथ इतना गहरा सादृश्य नहीं रखती, जितना कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ। सामनता के इसी सादृश्य के आधार पर उसने माना कि सभी मनुष्य एक ही सार्वभौमिक कानून के द्वारा संचालित हैं। सार्वभौमिकतावाद के समर्थक विद्वानों में सन्त पाल, सन्त अम्ब्रोज, सन्त आगस्टाइन, सन्त ग्रोगोरी प्रथम, पोप ग्लेसियस प्रथम आदि हैं। पुनर्जागरण से प्रभावित वैज्ञानिक विकास ने भी सार्वभौमिक समाज निर्मित करने में अपनी भूमिका निभाई। प्रमुख वैज्ञानिकों उदाहरणस्वरूप कौपर निकास गैलेलियो, न्यूटन, कैपलर तथा फ्रांसिस बेकन ने मनुष्य सत्य तक पहुँचने के लिए विज्ञान का माध्यम चुना। उनके अनुसार विज्ञान एवं तर्क द्वारा ऐसे नियमों को सृजित किया जा सकता है जो सम्पूर्ण मानव समाज में एक समान लागू हो सकते हैं। पृथ्वी द्वारा सूर्य के परिक्रमण का सिद्धान्त एवं न्यूटन का नियम इत्यादि ने आधुनिक समाज में सार्वभौमिकता के महत्व को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(3) **व्यक्तिवाद** - आधुनिकतावाद के आधार विशेषताओं में 'व्यक्तिवाद' को भी माना जाता है। इस मत के अनुसार सभी प्रकार के चिन्तन का केन्द्र व्यक्ति ही हैं व्यक्ति की भूमिका सर्वोपरी है। एडवर्ड चेनी, पोप इत्यादि ने व्यक्तिवाद को प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वस्तुतः व्यक्तिवाद सम्बन्धी आधुनिक-चिन्तन अपने मूल रूप में बौद्धिक जागरण के पश्चात् आया इसकी पृष्ठभूमि में मध्यकालीन धार्मिक संस्थाओं की अमानवीय निरंकुशता थी। धार्मिक संस्थाओं ने चर्च, पोप या ईश्वर को केन्द्र में रखकर व्यक्ति के महत्व को अत्यन्त तुच्छ बना कर उपस्थित किया था। व्यक्तिवाद ने वे सभी विचार-सिद्धान्त गलत सिद्ध किये जो व्यक्ति के तर्क पर सिद्ध नहीं किये जा सकते। समाज के सभी परिप्रेक्ष्यों को व्यक्ति की कसौटी पर कसकर देखने की बात कहीं गई। प्रश्न उठता है कि क्या आधुनिक काल से पूर्व व्यक्ति की महत्ता नहीं थी? उपनिषद् की यह उक्ति प्राचीन हैं- 'नहि मनुष्यात् श्रेष्ठतर किंचित्' अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। लेकिन यहाँ हमें सावधान रहना होगा कि मनुष्य की श्रेष्ठता पशु-पक्षी, जानवर, प्रकृति के सन्दर्भ में कही जा रही है। मनुष्य से भी श्रेष्ठ-उच्च ईश्वर है और सारे मूल्य उसी में केन्द्रित हैं। आधुनिक युग का व्यक्तिवाद ईश्वर की जगह मनुष्य को केन्द्रित करता है। आधुनिक युग में व्यक्ति-केन्द्रित अध्ययन प्रारम्भ होने के पश्चात् विचारकों ने मानव स्वभाव की विभिन्न व्याख्याएँ की तथा मानववाद के अनुरूप विभिन्न नये अनुशासनों का जन्म भी इसी क्रम में हुआ। राजनीति-दर्शन के प्रतिनिधि विचारक निकोली मैकियावेली ने नैतिकता, धर्म तथा राजनीति के सम्बन्धों को मानववाद के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया। मैकियावेली पहला विचारक था जिसने राजदर्शन को मानव केंद्रित बना दिया। इसी प्रकार टॉमस हाब्स तथा जॉन लॉक के विचारों का केन्द्र भी व्यक्ति ही है। फ्रांसीसी विचारक माण्टेस्क्यू ने निरंकुश शासन व्यवस्था तथा धार्मिक कट्टरता की प्रतिक्रिया में 'शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त' प्रस्तुत किया। डेविड ह्यूम, हैल्वेटियस तथा हॉलश आदि उपयोगितावादी विचारकों ने निष्कर्ष निकाला कि व्यक्ति आनन्द तथा पीड़ा नामक दो प्रेरक शक्तियों के वशीभूत होकर कार्य करता है। जॉन स्टुअर्ट मिल व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विशेष बल देता है। वह मनुष्य के मस्तिष्क को समाज-परिवर्तन का निर्धारक मानता है। मिल की मान्यता है- "विचारों को खिलने दो, उन्हें अभिव्यक्त होने दो, उन्हें जंजीरों में मत बाँधो। विचार मानव समाज के विकास, उसके उत्थान के लिए आवश्यक प्रेरणा स्रोत हैं।" हरबर्ट स्पेन्सर ने व्यक्तिवाद की नयी व्याख्या प्रस्तुत की। उसने कहा कि व्यक्ति का विकास प्राकृतिक ढंग से उसी तरह स्वतंत्रतापूर्वक होना चाहिए, जिस तरह मानव के अतिरिक्त किसी अन्य जीव का होता है। स्पेन्सर राजसत्ता को स्वतंत्रता के क्षेत्र में एक बुराई मानता है।

आधुनिकतावाद के प्रतिष्ठा के उपरान्त इस पर प्रश्न चिह्न भी लगाया जाने लगा। पहला प्रश्न चिह्न इसके बुद्धिवाद को लेकर था। मनोवैज्ञानिक अध्ययन ने बुद्धि के विज्ञान की जगह व्यवहार के विज्ञान पर बल दिया। मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य क्या करता है ? की बजाय मनुष्यों क्यों और किस लिए करता है? जैसे प्रश्नों पर बल दिया। सामाजिक वातावरण के साथ ही मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों पर भी बल दिया जाने लगा। मनोवैज्ञानिक मैकडुगल ने मनुष्य की 12 मूल प्रवृत्तियों को मुख्य माना। इसी

क्रम में फ्रायड ने चेतनावस्था के साथ अचेतनावस्था के सत्य को भी प्रमाणित किया। समाजशास्त्री मैक्स वेबर ने आधुनिकता को लक्ष्य करके सामाजिक क्रियाओं को चार प्रकार के वर्गों में विभक्त किया- उद्देश्य क्रियाएँ (तर्क का प्रयोग), मूल्य परक तार्किक क्रियाएँ (कर्ता-तर्क साध्य के रूप में, साधन का निर्धारण-सामाजिक मूल्य के रूप में), अनुभवात्मक अथवा संवेगात्मक क्रियाएँ, परम्परागत क्रियाएँ। टालकर पार्सन्स इस सम्बन्ध में मानव क्रियाओं की तीन कोटियाँ करता है- संज्ञानात्मक अभिप्रेरक, कैथेटिक अभिप्रेरक (व्यक्ति का संवेगात्मक अथवा अनुभवात्मक जुड़ाव), मूल्यांकनात्मक अभिप्रेरक। इसी प्रकार विल्फ्रेदो पारेतो ने कहा कि सामाजिक संन्दर्भ में विज्ञान तार्किक व प्रयोगात्मक तो है, परन्तु साथ ही वह प्रयोगात्मक समरूपता के नियम का पूर्णतः पालन नहीं करता। विलियम जोन्स ने बुद्धिवाद की एकांगिता पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहा कि सत्य वास्तव में आस्था-विश्वास है। उसने कहा कि धर्म, नैतिकता, मूल्य जैसे प्रश्नों का उत्तर हृदय से ही मिल सकता है, मस्तिष्क द्वारा नहीं। इसी प्रकार फ्रेडरिक नीत्शे भी किसी शाश्वत सत्य की बुद्धिवादी अवधारणा की निन्दा करता है। जर्मनी के विचारकों मैक्स होर्वाइमर तथा थियोडोर विसेग्रन्ड आडोर्नी ने भी ज्ञानोदय के तर्कवाद की आलोचना की। उन्होंने तार्किक बौद्धिकवाद को वर्चस्व के रूप में देखा है। तार्किक आधुनिकतावाद की आलोचना करते हुए युर्गेन हेबरमास ने संचारात्मक तर्क की उपयोगिता की बात की। हेबरमास ने ज्ञान को तीन कोटियों में विभाजित किया है।

1. आनुभाविक/ विश्लेषणात्मक ज्ञान
2. ऐतिहासिक ज्ञान
3. विवेचनात्मक ज्ञान

हेबरमास विज्ञान के तकनीकी नियंत्रण के अतिरिक्त आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक हितों की पूर्ति को भी उतना ही आवश्यक मानता है। इसीलिए हेबरमास ने विवेचनात्मक सिद्धान्त को संचार से जोड़ा है। हर्वर्ट मार्क्यूज ने आधुनिकता की आलोचना करते हुए लिखा कि आधुनिक समाज के अत्यधिक विकसित जन सम्पर्क के साधनों का प्रयोग एक निश्चित वर्ग यानी पूँजीपति वर्ग ही करता है। पूँजीपति वर्ग तार्किक युक्ति का प्रयोग कर अन्य वर्ग के असंतोष को संवेदना शून्य बना देता है। अमरीकी विचारक एरिक फ्रॉम के अंतर्गत मनुष्य के अकेलेपन की पीड़ा का चित्रण किया है कार्ल पॉपर ने आधुनिकता के पूर्ण सत्य के दावे पर प्रश्न चिह्न लगाया। उसने कहा कि मानवीय ज्ञान हमेशा ही अपूर्ण रहता है, अतः सत्य को प्राप्त कर लेने का वैज्ञानिक दावा करना असत्य ही है। एलेस्डायर मैकिंटाइर तथा चार्ल्स टेलर ने आधुनिक व्यक्ति केन्द्रित अध्ययन की आलोचना की है। उन्होंने कहा कि व्यक्ति का 'स्व' समान के 'पर' से अलग नहीं है। चार्ल्स टेलर का आग्रह समाज से कटे हुए व्यक्ति के बजाय समाज से जुड़े हुए व्यक्ति केन्द्रित अध्ययन को विकसित करने पर बल दिया।

अतः उपर्युक्त आलोचना- प्रत्यालोचना से स्पष्ट है कि आधुनिकता की आवधारणा सामन्ती मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया में विकसित हुई थी। आधुनिकता के उदय को ज्ञानोदय के उदय के रूप में देखा गया है, क्योंकि मध्यकाल के भाववाद, आस्था, विश्वास, ईश्वर की जगह इसने बुद्धि, तर्क, व्यक्तिवाद, मानववाद को प्रतिष्ठित किया। लेकिन एक समय बाद बुद्धि- तर्क की अधिकता के प्रति भी विद्वानों के मन में अनिश्चित एवं संशय की भावना पनपी। तर्क ज्ञान के लिए आवश्यक है लेकिन क्या केवल तर्क से सत्य तक पहुँचा जा सकता है? विज्ञान जन मानव सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक है लेकिन क्या केवल विज्ञान ही मनुष्य को सुखी- सभ्य बना सकता है? ऐसे प्रश्नों ने आधुनिकता की सीमाएँ स्पष्ट कर दीं। ज़ाहिर है ऐसी पृष्ठभूमि में उत्तर-आधुनिकतावाद का जन्म हुआ। अगले खण्ड में आप उत्तर- आधुनिकतावाद की प्रमुख अवधारणा से परिचित होंगे।

16.3.2 आधुनिकतावाद और हिन्दी साहित्य

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल व्यापक रूप से आधुनिकताबोध से संचालित और प्रभावित रहा है। भारतेन्दु कालीन नवजागरण के मूल में आधुनिकतावादी चेतना ही काम रही है, जिसने पुराने मूल्यों को आधुनिक सन्दर्भों में देखने की दृष्टि प्रदान की। महावीर प्रसाद द्विवेदी का साहित्य रीतिकालीन संस्कारों से मुक्ति के सन्दर्भ में ही लिखा गया है। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती', 'साकेत' तथा हरिऔध 'प्रियप्रवास' इसी चेतना से लिखा गया है। छायावादी साहित्य (विशेषकर कविता, नाटक) व्यापक रूप से पुनरुत्थानवादी चेतना से आप्लावित है। प्रगतिवादी साहित्य के केन्द्र में प्रगतिशील चेतना काम कर रही है, जो ईश्वर की जगह मानव को केन्द्र में रखती है। हिन्दी साहित्य का प्रयोगवादी कविता व्यापक रूप से आधुनिकतावादी चेतना से संचालित रहा है। आधुनिकतावादी अवधारणाओं अंतर्विरोध, विसंगति, बिडम्बना, संत्रास की दृष्टि से नई कविता विशेष महत्त्वपूर्ण है। मोह भंग की कविता, जनवादी कविता एवं उत्तर - आधुनिक कविता व्यापक रूप से आधुनिक विमर्शों से जुड़ी हुई हैं।

बोध प्रश्न - 2

(क)- नीचे कुछ कथन दिये गए हैं। इनमें से कुछ सही हैं तथा कुछ गलत। उपयुक्त चिह्न लगाकर स्पष्ट कीजिए।

1. आधुनिक आंग्ल भाषा के मार्टेनिटी शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है।
2. आधुनिक शब्द की व्यंजना 'वर्तमानकालिक बोध' से है।
3. आधुनिकता अतीत पर बल देती है।
4. आधुनिकता बोध ईश्वर को केन्द्र में रखता है।

5. आधुनिकता के केन्द्र में आस्था -विश्वास है।

(ख)- रिक्त स्थानों पूर्ति कीजिए।

1. को आधुनिक बुद्धिवाद का जनक कहा जाता है।
2. ने धर्म तथा आत्मा को आन्तरिक अनुभव माना।
3. सार्वभौमिकवाद का सिद्धान्त..... का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है।
4. आधुनिकतावाद ने ईश्वर की जगह..... को प्रतिष्ठित किया।
5. जॉन स्टुअर्ट मिल..... पर विशेष बल देता है।

16.4 उत्तर-आधुनिकता क्या है?

अकादमिक क्षेत्र में उत्तर -आधुनिकता अभी भी एक जटिल प्रत्यय, जिसकी स्पष्ट अवधारणा सुनिश्चित नहीं हो पाई है। हाँलाकि पश्चिमी दर्शन और समीक्षा जगत में इस पर कम नहीं लिखा गया है। पिछले कुछ दशकों में सर्वाधिक प्रभावशाली आन्दोलन के रूप में उत्तर-आधुनिकता को स्वीकृति एवं मान्यता मिली है। प्रश्न है कि उत्तर-आधुनिकता क्या है? क्या यह आधुनिकता का अगला चरण? क्या यह आधुनिकता से एकदम भिन्न है? क्या यह भाषाई आन्दोलन है? क्या यह तकारवादी आन्दोलन है? क्या यह 'अन्त' की घोषणा करने वाला आन्दोलन है? उत्तर- आधुनिकता की स्थिति क्या समाज को विनाश की ओर ले जा रही है? क्या उत्तर- आधुनिकता की स्थिति क्या समाज के विकास की स्वाभाविक परिणति है? क्या उत्तर- आधुनिकता भय-सृजन की संयुक्त परिणति है? जाहिर है ढेरों ऐसे प्रश्न हैं जो उत्तर-आधुनिकता को समझने में हमारी मदद कर सकते हैं। उत्तर आधुनिकता शुद्ध रूप में न केवल भाषाई आन्दोलन है, न अकादमिक आन्दोलन। यह अलग बात है कि इस आन्दोलन में भाषा को सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता है। उत्तर-आधुनिकता को 'डी कान्स्ट्रक्शन' भी कहा गया है। डी कान्स्ट्रक्शन' के तीन बीज बिन्दु हैं- भिन्नता (डिफरेंस), निशान और आलेखन (आर्क राइटिंग)। भिन्नता और निशान का सम्बन्ध साहित्य की भाषिक संरचना से है और आद्यलेखन का सम्बन्ध अनकहे की तलाश से। भिन्नता से तात्पर्य चिह्न की दो क्रियाओं से है- भिन्नता और विलम्बन। भिन्नता का यहाँ अर्थ है कि जो वह है वह दूसरा नहीं है तथा विलम्बन का अर्थ है ऐसे कुछ जो पूरे रूप में पाठ में उपस्थित नहीं है या स्थगित है। निशान या पदचिह्न कुछ है जिससे अनुपस्थिति तक पहुँचा जा सकता है। दरिदा के अनुसार साहित्य में भाषा का नहीं निशान की अनुपस्थिति का महत्व है। वस्तुतः भाषा का मौन अन्तराल निशान टेम्स ही है। प्रत्येक शब्द या सृजनात्मक शब्द अपने आप में अपर्याप्त या अपूर्ण होता है। वह जितना कहता है उससे अधिक अनकहा रह जाता है यानी शब्दों में विलोपीकरण की शक्ति निहित रहती है। भाषागत सभी चिह्न हमें उस दिशा की ओर ले जाते हैं कि जो चिह्न में नहीं है। फिर प्रश्न है कि उनकी सार्थक

तलाश कैसे हो? वस्तुतः चिह्नों में कुछ निशान मौजूद रहते हैं, जो हमें अनुपस्थित अर्थ की ओर ले जाते हैं। अनुपस्थित अर्थ ही आद्यलेखन है। श्रेष्ठ साहित्य या भाषा अपने आप में इतनी सामर्थ्यवान होती है कि विशालतर छवियाँ अपने आप में धारण किए हुए होती हैं। वस्तुतः सही अर्थों में भिन्नता, निशान या आद्यलेखन उत्तर-आधुनिक टूल्स(औजार) हैं, जिसके आधार पर समकालीन यथार्थ तक पहुँचा जा सकता है।

16.4.1 उत्तर-आधुनिकता की प्रस्तावना

उत्तर-आधुनिकता जटिल और ऐतिहासिक पद है, जिसका जन्म कम्प्यूटर युग, दूर संचार माध्यम तथा टेक्नोलॉजी आदि की नयी परिस्थितियों के कारण हुआ है। उत्तर-आधुनिकतावाद में 'उत्तर' शब्द एक 'मूड' की ओर संकेत करता है, जो हमेशा 'अन्त' की बात करता है। वह अन्त किसी भी रूप में हो सकता है। जैसे यह तो 'लेखक की मृत्यु', 'कलाकार की मृत्यु', या सबसे विद्रूप के साथ 'इतिहास के अन्त' के रूप में सामने आता है। इसमें तर्क, यथार्थ, विचारधारा, इतिहास तथा रूप सबके नकार की घोषणा मिलती है। एक प्रकार से यह एक अराजकतावादी निहिलिस्ट प्रवृत्ति है, ऐसा भ्रम होता है। वस्तुतः इनके नकार का एक विशेष प्रयोजन है।

उत्तर-आधुनिकतावाद का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। सबसे पहले जॉन बार्थ ने 1967 ई0 में कला के सन्दर्भ में इस पद का प्रयोग किया था। 1979 में प्रकाशित ल्योतार की "द पोस्ट मॉडर्न कंडीशन ए रिपोर्ट ऑन नॉलेज" तथा 1984 में प्रकाशित फ्रेडरिक जैम्सन की 'पोस्ट ऑफ लेट कैप्टलिज्म में उत्तर-आधुनिकता की बुनियादी मान्यताएँ मिलती हैं, किन्तु जॉक देरिदा की पुस्तक 'ग्रामटोलॉजी' डी-कान्स्ट्रक्शन की आधारशिला ही है। जॉक देरिदा ने अपने तर्क से यह सिद्ध किया कि पुराने सारे दर्शन, तर्क, विचारधाराएँ 'सत्य के हाशिए' हैं। भाषा का कार्य 'हाशिए की खोज' है। इस क्रम में उत्तर-आधुनिकतावाद के तीन केन्द्रीय प्रस्ताव हैं- समग्रतावादी सार्वभौमिक शक्तियों का नकार, तर्कवाद का नकार और आधुनिकतावादी सक्षमता का नकार। पश्चिमी जगत ने अपनी ज्ञानोदयी भंगिमा के कारण एक केन्द्रीकृत विश्व का निर्माण किया था, जिसमें सार्वभौमिक सिद्धान्त पर बल देने की बात थी। केन्द्रीकृत विश्व ओर कुछ नहीं 'पूँजीवादी विश्व ही है, जिसने अपने साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के तहत शेष दुनिया (तीसरी दुनिया) के देशों को अपने अन्तर्गत कर लिया था। यह धारणा पश्चिम के तर्कवाद में निहित है। एडोर्नो होर्खीमार ने बताया कि किस तरह पश्चिम का विमर्श रहा है। मनुष्य को जीना है तो विकास करना है। विकास करना है तो प्रकृति पर नियंत्रण पूर्ण नियंत्रण जरूरी है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की अधिकांश ज्ञानोदय धारणाएँ इसी उद्देश्य से प्रेरित थीं। आगे एडोर्नो ने लिखा है हर प्रगति के साथ ही दमन भी चलता रहता है। पश्चिम का समूचा तर्कशास्त्र अन्तर्विरोधों रहित अवस्था, प्राप्त करने का तरीका है जो मूलतः नियंत्रण के रास्ते से आता है।

16.4.2 उत्तर-आधुनिकता के मुख्य बिन्दु

उत्तर- आधुनिकता के केन्द्र में न केवल उत्पादन है या अर्थव्यवस्था है बल्कि उपभोक्ता समाज है। ऐसी परिस्थिति के निर्माण उद्योगों की बढ़ती संख्या तथा लोगों की उत्पादन की अधिकता के कारण हुआ। अब उपभोक्तियों के लिए बाजार भरा हुआ था। शर्त यह थी कि उपभोक्तियों की क्रय शक्ति कैसे बढ़े?। वस्तुओं पर से उद्योगपतियों का अधिकार समाप्त होने तथा वस्तुओं की गुणात्मकता की ओर उपभोक्तियों का ध्यान आकृष्ट होने से नई स्थिति सामने आई। बहुत सारा तैयार माल सस्ते दामों में बिकने लगा, तदन्तर पूँजीवादी व्यवस्था के सामने एक भीषण संकट पैदा हुआ, क्योंकि विक्रय हेतु भविष्य में किसी नये बाजार की सम्भावना समाप्ति पर भी, बाजार में एक प्रकार का ठहराव आ गया। ऐसी परिस्थितियों में पूँजीपतियों ने अपने सामान बेचने हेतु विकासशील देशों के ऊपर दबाव बनाया। फलतः नये बाजार की खोज के लिए तीसरी दुनिया के देश बड़ी सम्भावना के रूप में उभरे। विकसित देशों ने अपना माल बेचने के लिए विज्ञापनों का सहारा लिया। विज्ञापन संस्कृति में तकनीकी विशेषज्ञों की माँग बढ़ी। अब जरूरत का स्थान इच्छा ले लेती है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति में इच्छा अनन्त हो गई। बौद्धिआ ने इसे 'छल' कहा। उत्तर-आधुनिकता में तकनीक मुख्य हो गई। माध्यम मुख्य हो गये। मार्शल मैक्लुहाल ने साधन को साध्य घोषित करते हुए 'मीडियम ही मैसेज' का नारा दिया। आधुनिकता ने जिसे अप्रस्तुति योग्य करार दिया था। (अपने ज्ञान और तर्क की तुला पर), उसे उत्तर-आधुनिकता ने केन्द्र में खड़ा कर दिया। जैसे नारी, दलित, पिछड़े इत्यादि। केन्द्र का अर्थ यहाँ मुख्यधारा में लाना ही था, इन की केन्द्रीयकरण करना। क्योंकि उत्तर-आधुनिकता केन्द्रीयकरण को अस्वीकार करके विकेन्द्रीयकरण पर बल देती है।

16.4.3 आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता

आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता क्या एकदम भिन्न प्रत्यय है? विकास की दो मंजिलें हैं? या आधुनिकता का सहज विकास उत्तर-आधुनिकता है? इन प्रश्नों पर विचारकों में परस्पर विरोध की स्थिति है। लेकिन एक बात प्रायः चिंतकों ने स्वीकार की है कि उत्तर-आधुनिकता की समझ के बिना आधुनिकता की समझ प्राप्त नहीं की जा सकती। उदाहरण के तौर पर हम देखें कि 'वेस्टलैण्ड' और बुल्फ के 'लाइट हाऊस' में मानवीय आत्मनिष्ठता के वर्तमान खण्डित दृष्टिकोण को प्रकट करते समय आधुनिकता दुःख, एकाकी भाव के रूप में दिखता है। आधुनिकतावादी मानते हैं कि कला जीवन में अर्थ की खोज का नाम है। कला जीवन को व्यवस्था प्रदान करता है। जो कि आधुनिक जीवन में कहीं खो गया है। इसके ठीक विपरीत उत्तर-आधुनिकतावाद जीवन के विखंडित टुकड़ों में दुःख और खोने के एहसास की बजाय उसमें आनन्द तलाशता है। वही दुःख को उत्सव की तरह देखता है। फिल्मी गीतों के उदाहरण से हम आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के अन्तर को बखूबी समझ सकते हैं। आधुनिकतावादी मूड की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार होगी-

दुनिया में हम आए हैं तो जीना ही पड़ेगा, जीवन है अगर ज़हर तो पीना पड़ेगा।

जिंदा हूँ इस तरह कि गमे जिंदगी नहीं, जलता हुआ दिया हूँ मगर रोशनी नहीं।

इसके विपरीत उत्तर-आधुनिकतावादी मूड की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार होगी-

हर फ्रिक को धुएँ में उड़ाता चला गया, मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया

बर्बादियों का जश्न मनाना कबूल था, बर्बादियों का शोक मनाता चला गया।

आज में ऊपर आसामाँ नीचे, आज में आगे, जमाना है पीछे।

आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के पाथर्क्य-विवेचन के सन्दर्भ में फ्रेडरिक जेमसन ने पूँजीवाद के तीन स्वर्गों की चर्चा की है-

1. बाजार पूँजीवादी: जिसमें भाप के इंजन का आविष्कार हुआ। इसका समय 18वीं से उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध का है।
2. एकाधिकार पूँजीवाद: उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से लेकर बीसवीं सदी के मध्य तक का समय। इस काल में बिजली और अति ज्वलन मोटर इंजनों का आविष्कार हुआ। इस काल में आधुनिकतावाद कहा गया है।
3. उपभोक्ता पूँजीवाद: वर्तमान युग। इस स्थिति में ज्यादा जोर सामानों के क्रय, विक्रय और मार्केटिंग पर रहता है। उपभोग पर इसमें सर्वाधिक बल रहता है। तकनीक और माध्यम पर इसमें सर्वाधिक बल रहता है। इसे ही उत्तर-आधुनिकता कहा गया है।

आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के सम्बन्धों के प्रश्न पर जहाँ मार्शल मैक्लुहाल और बौद्रिया दोनों में विरोध मानते हैं, वहीं ऐलेक्स कॉलिनिकस का विचार है कि उत्तर-आधुनिकतावाद की मूल प्रवृत्तियों आधुनिकतावाद में निहित हैं। ल्योतार ने उत्तर-आधुनिकता को आधुनिकता का अगला चरण माना है। हेबरमास भी दोनों में विरोध की स्थिति नहीं देखता।

16.4.4 उत्तर-आधुनिकता के विभिन्न मत

उत्तर-आधुनिकता के सम्बन्ध में विद्वान दो शिवरों में बँटे हुए हैं। एक शिविर में इसे क्रान्तिकारी कहा जाता है तो दूसरे शिविर में अर्थहीन और आतंकवादी। लियोतार्द के अनुसार उत्तर-आधुनिकतावाद आधुनिकता के भीतर की ही एक प्रवृत्ति है जो किसी चीज पर विलाप नहीं करती। वही यर्थाथ, क्रमबद्धता और समग्रता की धारणा को अस्वीकार करती है। हेबरमास उत्तर-आधुनिकतावाद में भी आधुनिकता की कुद विशिष्टताओं को बनाए रखना चाहता है। डेरिदा का बल अनकहे और अनुपस्थिति की तलाश पर ज्यादा है। ल्योतार ने 'महावृत्तान्तों के प्रति अविश्वसनीयता' की प्रवृत्ति को उत्तर-आधुनिकता के सन्दर्भ में समझा। आधुनिकता के समग्रतावाद को ल्योतार ने निरंकुश

माना और संदेशवाद को बहुलतावाद में बदला। उत्तर-औद्योगिक समाज में चूँकि 'ज्ञान की उत्पादक' हो गया इसलिए ल्योतार ने महावृतांत (महाविचार, महानायक आदि) को भविष्यहीन कहा। फ्रेडरिक जेमसन ने उत्तर-आधुनिकतावाद को 'वृद्ध पूँजीवाद के सांस्कृतिक तर्क' के रूप में देखा जिसमें बहुराष्ट्रीय निगमों की तकनीक और उपभोक्तावादी विचार सक्रिय है। एनस हैलर के लिए उत्तर-आधुनिकतावाद अन्ततः बहुलतावाद है जो उत्तर-औद्योगिक समाज का परिणाम है। हैबर मास के लिए उत्तर-आधुनिकता एक योजना है, उपलब्धि नहीं। जॉन मैकग्वाल ने लिखा है उत्तर आधुनिकता एक ऐसी फिसलनदार पदावली है कि हम उसे आसानी से स्थिर नहीं कर सकते।

16.4.5 उत्तर-आधुनिकता और हिन्दी साहित्य

जैसा कि पूर्व में कहा गया कि उत्तर-आधुनिकता को लेकर उसके विचारकों में ही मतभेद ही स्थिति है तो सामान्य पाठक और आलोचक उसे सही रूप में समझ सकेंगे, यह मुश्किल है। भारतीय संन्दर्भ में उत्तर-आधुनिकता पर विचार करते हुए डॉ० बच्चन सिंह ने टिप्पणी की है- "इसमें (उत्तर आधुनिकता में) तर्क" यर्थाथ, इतिहास, रूप सबका नकार है। यह एक अराजकतावादी निहलिस्ट प्रवृत्ति है। अपने यहाँ तो अभी पूरी तरह से आधुनिकतावाद ही नहीं है, उत्तर- आधुनिकतावाद तो दूर की स्थिति है।" लेकिन खुद अगली ही पंक्ति में बच्चन सिंह इसके प्रभाव को स्वीकारते प्रतीत होते हैं, जब वे कहते हैं- "पर एतदजन्य उपभोक्तावाद ने हमारी संस्कृति ओर मूल्यों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया है।" तात्पर्य यह कि विचारकों का पुराना दल अभी भी उत्तर-आधुनिकता में सब कुछ नकारात्मक ही देखता है औ उसे सम्पूर्ण रूप में खारिज करने की वकालत करता है, लेकिन युवा आलोचकों ने उत्तर-आधुनिकतावाद में सम्भावना भी देखी है। देरिदा ने भाषा को केन्द्र में करने अनुपस्थित अर्थों की तलाश की है। साहित्य के सन्दर्भ में गार्सिया मार्केज के 'एकान्त के सौ वर्ष' जैसी कृतियाँ उत्तर आधुनिकतावादी साहित्य की केन्द्रीय कृति है। मार्केज ने एक नये प्रकार के शिल्प को जन्म दिया, जिसे 'जादुई यर्थाथवाद' कहा गया है। प्रश्न है 'जादुई यर्थाथवाद' क्या है? वस्तुतः यर्थाथ अब पहले जैसा सपाट नहीं रह गया है। तंत्र-व्यवस्था- मनुष्य का मन और सामाजिक स्थितियाँ पहले से कहीं ज्यादा जटिल, सूक्ष्म हो गई हैं, उन्हें किसी दर्शन-विचार के माध्यम से हल नहीं किया जा सकता। यर्थाथ के उद्घाटन के लिए या यर्थाथ तक पहुँचने की जादुई शैली का नाम है जादुई यर्थाथवाद। हिन्दी साहित्य में दलित, स्त्री, आदिवासी साहित्य इस आन्दोलन के उभार है। मनोहर श्याम जोशी का कसप, हरिया हरक्युलीन की हैरानी जैसे उपन्यास को उत्तर- आधुनिकतावादी कहा गया है। विनोद कुमार शुक्ल का उपन्यास 'दीवार में एक खिड़की रहती थी', गोविन्द मिश्र का 'पाँच आंगनों वाला घर', सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' तथा उदयप्रकाश की लम्बी कहानियाँ तिरिक्ष, वारेन हेस्टिंग्स का साँड़, पीली छतरी वाली लड़की' जैसी कृतियाँ उत्तर-आधुनिक कृतियाँ ही हैं। उदाहरण के लिए 'हरिया हरक्युलिस की हैरानी' में मनोहरश्याम जोशी ज्ञान की सिर्फ बहिर्गत अस्तित्व को प्रशंस्कित करने हैं तो प्रकारान्तर से वह यह सिद्ध करते हैं कि यर्थाथ का ज्ञान सिर्फ प्रयोगशालाओं, शास्त्रों, अकादमिक बहसों में नहीं रहता, बल्कि अनुभव में भी रहता है और

अनुभव की प्रक्रिया प्रचलित ज्ञान को चुनौती दे सकती है। हरिया हरक्यूलिस जिस ज्ञानी संसार के लिए पगलेठ है उस पगलेठ की नजर में यह ज्ञानी संसार स्वयं एक पगलेठ संसार है। ज्ञानोदय पर अनुभाव की बहाली उत्तर आधुनिकता साहित्य का प्रस्थान है। तिरिक्ष कहानी में जिस प्रकार 'व्यवस्था' कहानी नायक को पागल करके मारती है, इस क्रम में व्यवस्था की जटिलता स्वयं उजागर हो जाती है। दीवार में एक खिड़की रहती थी में जिस प्रकार के माध्यम से, व्यवस्था को नाकर कर फंतासी के माध्यम से खिड़की का रूपक तैयार किया गया है। वह उत्तर-आधुनिकतावादी विरोध ही है। पीली छतरी वाली लड़की में जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था, स्त्री देह, सामाजिक दमघोंटू यर्थाथ पर जादुई यर्थाथवाद की विजय दिखाई गई है। वह आधुनिकता पर उत्तर-आधुनिकतावादी विजय ही है।

16.4.6 उत्तर-आधुनिकता की सीमा

उत्तर आधुनिकतावाद पश्चिमी ज्ञानोदय के विरुद्ध खड़ा हुआ, जो आधुनिकतावाद का आधार रहा है। यह ज्ञानोदय के आधारभूत सिद्धान्तों को प्रश्नांकित करता है। समाजशास्त्र, इतिहास और दर्शन के बने-बनाये स्वीकृत सिद्धान्तों को उत्तर-आधुनिकता किसी नये सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है? इसका उत्तर नहीं है। क्योंकि उत्तर-आधुनिकता स्वयं कोई सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं करता, यह उसकी एक सीमा हसे सकती है। उसका तर्क है कि जो भी सिद्धान्त निर्मित होगा। वह अधूरा होगा। स्पष्ट है कि उत्तर-आधुनिकतावादी मुकम्मल परिभाषा सम्भव नहीं है, क्योंकि यह स्वयं समग्रता विरोधी है।

उत्तर-आधुनिकतावाद की सीमा निर्धारित करते हुए हम यह कह सकते हैं कि यह आधुनिकतावाद की कमियों की ओर तो शारा करता है, लेकिन स्वयं किसी सिद्धान्त देने से पीछे हट जाता है। अतः उत्तर-आधुनिकतावाद एक भ्रामक विचारधारा के तौर पर हमारे सामने उपस्थित होता है। यह विचारधारा इतिहास रहित एक ऐसे विखंडित समाज को निर्मित करने का एक अमूर्त प्रयत्न है। जिसकी कोई निश्चित दिशा स्पष्ट नहीं है। एक ऐसे समाज को निर्मित करने पर बल देता है, जिसकी कोई निश्चित संरचना नहीं है।

16.4.7 उत्तर-आधुनिकता का प्रदेय

साहित्यशास्त्र को उत्तर-आधुनिक समीक्षा की बड़ी देन है-आलोचनात्मक दूरी की। जिसे आप चुनौती देते हैं, आप उसमें शामिल होते हैं। यहाँ आलोच्य विषयवस्तु और आलोचक के बीच की दूरी खत्म हो जाती है। जॉक देरिदा स्वयं कहता है- पाठ के बाहर कुछ नहीं। बहुलतावाद उत्तर-आधुनिकता का वह अस्त्र है जिससे केन्द्रीकृत वैश्विक पूँजी का विखण्डन किया जा सकता है, यह उत्तर-आधुनिकता का नैतिक पक्ष हो सकता है। उत्तर-आधुनिकता अतीत को न व्यर्थ मानता है न आदर्श। इसकी ऐतिहासिकता यही है कि यह उपलब्ध इतिहास को प्रश्नांकित तरीके से जटिल बनाता है। इतिहास अब बदल जाता है। अब हमारे समक्ष जो इतिहास का पाठ प्रस्तुत होता है, वह केन्द्रीय पाठ नहीं होता बल्कि बहुलतावादी सम्पूर्णता का पाठ होता है। यह आधुनिकता के ज्ञानोदय,

जिसमें विज्ञान का सत्य, ज्ञान का सत्य, राजनीति का सत्य, धर्म-अध्याय, साहित्य-संस्कृति का सत्य जैसी शाश्वत अवधारणाएँ लिपटी हुई हैं, को अपने विखण्डनवादी पाठ के द्वारा गल्प में तब्दील कर देता है। यह पाठ की निश्चितता को अनिश्चित मत में, केन्द्रीयता को बहुलता में तथा अन्तिम को अन्तिम में रूपान्तरित कर देता है। ऐसी अवस्था में विज्ञान ज्ञान का, राजनीति व्यवस्था का तथा साहित्य संस्कृति का गल्प हो उठता है। उत्तर-आधुनिकता में सबको जगह है। यहाँ कुछ भी विशिष्ट नहीं सब सामान्य है। आधुनिकता के शिखर पर कलाकार अपनी विशिष्टता के कारण अजनबीपन का शिकार हो गया था। उसे उत्तर-आधुनिकता ने दूर किया। उत्तर-आधुनिकता सम्पूर्णतावाद का निषेध करता है।

बोध प्रश्न - 3

(क)- निम्नलिखित शब्दों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1. विखण्डनवाद के बीज बिन्दुओं पर 10 पंक्तियों में विचार व्यक्त कीजिए।
2. उत्तर-आधुनिकतावाद के इतिहास पर संक्षिप्त चर्चा 10 पंक्तियों में कीजिए।
3. उत्तर-आधुनिकता के उपभोक्तावादी संस्कृति को 10 पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

(ख)- वाक्य के सामने सही अथवा गलत लिखिए।

1. उत्तर-आधुनिकता में भिन्नता पर बल दिया गया है।
2. फ्रेडरिक जैम्सन उत्तर- आधुनिकतावादी लेखक है।
3. 'ग्रामैटोलॉजी' पुस्तक का लेखक फ्रेडरिक जैम्सन है।
4. उपभोक्तावादी संस्कृति को बौद्धिदा ने 'छल' कहा है।
5. डॉ० बच्चन सिंह ने उत्तर-आधुनिकता को अराजकतावादी प्रवृत्ति मानते हैं।

16.5 सारांश

आधुनिकता का प्रयोग हम मुख्यतः दो संदर्भों में करते हैं- काल के अर्थ में एवं प्रवृत्तियों के अर्थ में। आधुनिकता ने आस्था-विश्वास की जगह तर्क एवं भाव की जगह बुद्धि पर बल दिया। ईश्वर का स्थान मानव ले लेता है और अतीत का स्थान वर्तमान। किसी ने इसका लक्षण वैज्ञानिक कार्य-कारण पद्धति माना है तो किसी ने औद्योगिक कारण को। किसी ने इसे व्यक्तिवाद की विजय के रूप में देखा है तो किसी ने समाज की पुर्नसगहना एवे संरचनाकरण से जोड़ा है। आधुनिकता की

अवधारणा बुद्धिवाद, सार्वभौमिकतावाद, व्यक्तिवाद से संचालित रही है। उत्तर-आधुनिकता आधुनिकता का अलग चरण है। आधुनिकता का सम्बन्ध जहाँ औद्योगिकीकरण से है, वहीं उत्तर-आधुनिकता का सम्बन्ध यंत्रीकरण से। अर्थात् उत्तर- आधुनिकता, यंत्रों के अत्यधिक प्रयोग के बाद उत्पन्न हुई वैचारिक दर्शन का नाम है। उत्तर-आधुनिकता किसी भी जड़ सैद्धान्तिकी के नकार से विकसित होता है। इस क्रम में कभी लेखक की मृत्यु, 'कविता की मृत्यु' को कभी 'इतिहास के अन्त' की घोषणा की जाती है। उत्तर-आधुनिकतावादी भाषा की खोज 'हाशिए की खोज' है। इस क्रम में उत्तर- आधुनिकतावाद के तीन केन्द्रीय प्रस्ताव हैं- समग्रतावादी सार्वभौमिक शक्तियों का नकार, तर्कवाद का नकार और आधुनिकतावादी सक्षमता का नकार। आधुनिकता के केन्द्र में तर्क और ज्ञानोदय र्थे आधुनिकता ने तर्क की कसौटी पर जिसे हाशिये पर धकेल किया था। उत्तर-आधुनिकता ने केन्द्र में खड़ा कर दिया। जैसे स्त्री-विमर्श, दलित- विमर्श, आदिवासी - विमर्श।

16.6 शब्दावली

आधुनिकता-	औद्योगिकी के पश्चात् उत्पन्न नवीन दर्शन
उत्तर-आधुनिकता-	यंत्र केंद्रित दर्शन
सापेक्षतावाद-	किसी मत, व्यक्ति को सामाजिक मूल्यों के सापेक्ष देखने की दृष्टि
उदारतावाद-	बुद्धियुक्त व्यक्ति केंद्रित व्यवस्था
बुद्धिवाद-	तर्क पर आधारित चिंतन
सार्वभौमिकतावाद-	तर्क-विज्ञान के नियम को समान रूप से लागू करने का सिद्धान्त
व्यक्तिवाद-	व्यक्ति की भूमिका को केंद्रीय मानने का दर्शन।

16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 2 (क)

1. सही
2. सही
3. गलत
4. गलत

5. गलत

(ख)-

1. रेने देकार्त
2. मार्टिन लूथर
3. आधुनिकता
4. मनुष्य
5. स्वतंत्रता

बोध प्रश्न 3 (ख)

1. सही
2. सही
3. गलत
4. सही
5. सही

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीच शब्द- बच्चन सिंह
2. आलोचना से आगे- सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन

16.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ऑफ ग्रामेटोलॉजी - डेरिदा
2. कंज्यूमर सोसाइटी- ज्याँ बौद्रिआ

16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आधुनिकता के प्रमुख प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।

2. आधुनिकता एवं उत्तर-आधुनिकता के साम्य- वैषम्य पर प्रकाश डालिए।

इकाई 17 संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, शास्त्रवाद, नव्यशास्त्रवाद, नई समीक्षा

- 17.1 प्रस्तावना
- 17.2 उद्देश्य
- 17.3 आलोचनात्मक संदर्भ
 - 17.3.1 संरचनावाद
 - 17.3.2 उत्तरसंरचनावाद
 - 17.3.3 शास्त्रवाद
 - 17.3.4 नव्यशास्त्रवाद
 - 17.3.5 नई समीक्षा
- 17.4 काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 17.4.1 संरचनावाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 17.4.2 उत्तरसंरचनावाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 17.4.3 शास्त्रवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 17.4.4 नव्यशास्त्रवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 17.4.5 नई समीक्षा: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
- 17.5 सारांश
- 17.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 17.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 17.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 17.9 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई से पूर्व आप ने 'भारतीय काव्यशास्त्र की सम्पूर्ण परम्परा का अध्ययन किया .आप ने जाना कि काव्य का लक्षण क्या है . काव्य लिखने का प्रयोजन और उसके हेतु कौन से है . रस का स्वरूप क्या है तथा रसनिष्पत्ति तथा साधारणीकरण की प्रक्रिया क्या है. भारतीय काव्यसिद्धान्त के अंतर्गत रस के अतिरिक्त आपने अन्य काव्य-सिद्धान्तों का अध्ययन कर लिया है। आपने यह भी अध्ययन कर लिया कि भारतीय साहित्य सिद्धान्त में काव्य की आत्मा के प्रश्न पर एकमत नहीं बन पाया है।

साथ ही आप ने पाश्चात्य साहित्य सिद्धान्त का सामान्य एवं आलोचनात्मक परिचय प्राप्त कर लिया है। आप जान चुके हैं कि 'प्लेटो, अरस्तू की शास्त्रीय परम्परा आधुनिक काल में लौजाइनस, मैथ्यू आर्नल्ड, रिचर्ड्स , क्रोचे, इलियट से होती हुई विभिन्न काव्य - सिद्धान्तों तक पहुँची है। आधुनिक युग के दो प्रमुख काव्य - सिद्धान्तों मार्क्सवाद एवं अस्तित्ववाद का पर्याप्त प्रभाव साहित्य पर पड़ा है। इसी प्रकार आधुनिकतावाद एवं उत्तर - आधुनिकतावाद संबंधी विचारधारा से आधुनिक साहित्य का निकट का सम्बन्ध है।

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत इसी क्रम में यहाँ आप संरचनावाद, उत्तरसंरचनावाद, शास्त्रवाद, नव्य शास्त्रवाद एवं नई समीक्षा आन्दोलन का विस्तार से परिचय प्राप्त करेंगे।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

'संरचनावादी' आन्दोलन की पृष्ठभूमि एवं उसकी प्रमुख विशेषता से अवगत हो सकेंगे।

'उत्तरसंरचनावाद' के सामाजिक - सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समझ सकेंगे।

'शास्त्रवाद' की बुनियादी मान्यताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

'नव्य शास्त्रवाद' की उपपत्रियों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

'नई समीक्षा' काव्यान्दोलन के मतों का परीक्षण प्राप्त कर सकेंगे।

प्रमुख काव्य - आन्दोलनों के बहाने प्रमुख विचारकों के मतों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

17.3 आलोचनात्मक संदर्भ।

17.3.1 संरचनावाद

फर्डोनांद सासूर (1857 - 1913) ने भाषा में संरचनावाद की नींव डाली यह रूसी - रूपवाद के लगभग समांतर हुआ। इसीलिए आधुनिक संरचनावादी और उत्तर - संरचनावादी सासूर को अपना जनक मानते हैं। सासूर मानते हैं कि भाषा एक व्यवस्था है। वह चिह्नों की निर्मिति है। चिह्न जो मनमाने और भेदपरक होते हैं। एक भाषाई चिह्न में दो तत्व होते हैं। एक स्वरूपित (लिखित) और दूसरा उसका विचार। पहला तत्व व्यंजक है और दूसरा व्यंग्य। मसलन 'पेड़' शब्द पढ़ या सुनकर हम एक व्यंजक प्राप्त करते हैं जो तुरंत ही हमारे मन में पेड़ का चिह्न बन जाता है। शब्द अर्थ की परस्परता का मनमाना अथवा नियमरहित होना ही वह तत्व है जो सासूर ने भाषा विज्ञान और संरचनावाद को दिया। सासूर के यहाँ यथार्थ और उसके बोध यानी वस्तुगत यथार्थ और दिमाग के बीच की खाई बहुत साफ थी। सासूर मानते थे कि दुनिया का ज्ञान बहुत जटिल रूपों में आता है, वह भाषा के भीतर से आता है। जटिल होने के कारण इसके वाहक चिह्न स्वतंत्र होते हैं। यह स्वतंत्रता ही शब्द और अर्थ को अलग देती है। शब्द यथार्थ की खिड़की नहीं बनते। वे यथार्थ के शीशे नहीं बनते, दर्पण नहीं होते बल्कि शब्द अपने साथ अन्य तमाम व्यंजकों को लिये आते हैं। सासूर मानते हैं कि भाषा के बिना ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश संभव नहीं है। हमारा यथार्थ इस तरह, अनेक भाषाओं के द्वारा पैदा अपने भीतर के समय और वैषम्य से बनता है। विचार और अर्थ की यह परम्परा नए संरचनावाद का प्रथम बिन्दु है। नए संरचनावादियों में समाजशास्त्री नृतत्व - विज्ञानी क्लोड लेबी स्ट्रास और रोलाँ बार्थ प्रमुख हैं। स्ट्रास तथा बार्थ ने संरचनावाद को एक पूरे विज्ञान के रूप में विकसित करने की कोशिश की। सातवें दशक में स्ट्रास, बार्थ, फूको, अल्सूसर, लाकाँ आदि ने अपने - आपने मार्ग से आकर संरचनावाद को एक पूरे विज्ञान के रूप में विकसित करने की कोशिश की है। यह कोई एकीकृत भाषागत अथवा साहित्यगत आन्दोलन नहीं था लेकिन इसका असर बहुत व्यापक हुआ। संरचनावाद विचार की एक प्रवृत्ति के रूप में स्थापित हुआ।

संरचना क्या है? संरचना स्थापत्य कला में, विभिन्न अंगों की व्यवस्था का नाम है, जिसमें हर चीज एक - दूसरे से सम्बद्ध हो जाती है, जिसमें अलग - अलग तत्व एक दूसरे से जुड़ जाते हैं, जिसमें एक निश्चित रूप उभरता है, जो अनेक स्तरीय संरचना के लिए 'मॉडल' यानी आदर्श होता है, अंतिम संरचना होता है। यह अंतिम संरचना जो हर छोटी -से- छोटी संरचना में होती है, 'अर्थ' का केन्द्र होती है। वह हर चीज को मायने देती है। संपूर्णता का विचार, आत्म-नियमन का विचार और रूपान्तरण का विचार, ये तीन विचार संरचनावाद का सार है। हर स्थिति संपूर्ण है, सकल है। वह अपने नियमों से परिचलित है। वह लगातार रूपान्तरित होती है।

अब तक का ज्ञान, आवयविक संरचना के मुकाबले रूपात्मक (मनुष्याकत) संरचना का विचार नए संरचनावाद का सार है। संरचनाओं का रूपान्तरण वाला तत्व इस नए संरचनावाद की एकमेव विशेषता है जो मानता है कि संरचनाएँ रूपान्तरित होती हैं, इसीलिए उनका अध्ययन उपयोगी है ज्ञान के लिए रूपांतरण के तत्व में ही संरचनावाद को संस्कृति के क्षेत्र में प्रवेश करने का अवसर दिया। नए संरचनावादी प्रायः संस्कृति के रूपाकारों को संरचना के रूप में लेते हैं। वे उनकी प्राथमिकता तथा अन्य निर्णायक विशेषताओं की खोज करते हैं जिनमें उस रूप में गति आती है, आत्मानुशासन आता है, सपूर्णता आती है। यह सब उन्हें सतह पर ही मिलता है, रूप में ही मिलता है। सासूर ने बहुत पहले कहा था कि रूपों के भीतर गहरे में बहुत सी संरचनाएँ काम करती हैं। संरचनावादी वह प्रयत्न है जो गहनता में उतर कर छिपे तंत्र को, संरचना को देखता है। संरचनावादी होने के लिए जरूरी है कि किसी संरचना में दो चीजें अनिवार्यतया हों: (क) वह रूपात्मक हों, रूपान्तरण करने वाली हो, वह सिर्फ अनुभववादी स्थिति न हो। (ख) वह यानी संरचना अपने, सामाजिक समग्र के साथ एक-एक स्तर पर उपलब्ध हो।

लेवीस्ट्रास ने समाज शास्त्रों में संरचनावादी अध्ययन के लिए तीन चीजें अनिवार्य बताईं (क) अध्ययन योग्य वस्तु सर्वाभौमिक सत्ता रखने वाली हो, वह हर समाज में उपस्थित हो, (ख) उनकी पद्धति एक रूप वाली हो, (ग) वे सुपरिभाषित हो। संरचनावाद का अवदान यह है कि इसने समूचे जीवन को भाषा की संरचनाओं में सुव्याख्येय और सुपरिभाषेय सिद्ध किया। साहित्यिक संरचनावाद को इस भाषिक संरचनावाद का एक पूरक हिस्सा भर है। साहित्यमें संरचनावादी सिद्धान्त में हम पाते हैं कि लेखक का लोप रूप की वापसी, विज्ञान सम्मत विश्लेषण क्षमता आदि बाते पहले भी हुईं लेकिन संरचनावाद ने इन्हें पूरे शास्त्र का रूप दे दिया। लेवीस्ट्रास पहले बड़े चिंतक हुए जिन्होंने सासूर के इस संरचनावाद को आगे बढ़ाया और संरचनात्मक विज्ञान की अवधारणा विकसित की। सासूर और स्ट्रास की अवधारणाओं के समांतर रोलॉ बार्थ ने साहित्य की संरचनावादी व्याख्या प्रस्तुत कीं। उन्होंने संस्कृति को 'भाषा' माना। इस भाषा के 'चिह्न' चुने, संरचनाएँ चुनी और बताया कि आधुनिक संस्कृति की संरचना भाषा की तरह है। बार्थ ने आलोचना को एक स्वतंत्र काम बना डाला। उन्होंने बताया कि चिह्न विज्ञान (भाषागतवस्तु या पाठ) से आगे निकल जाती है। वह ऐसी दूसरी भाषा हो जाती है जो पहली भाषा से आगे जाती है। यह पद्धति संरचनावाद का असली विमर्श है। रचना के चिह्नों की संहिता को आगे बढ़ाना और उन्हें आजाद कर देना। हर संरचना एक हद के बाद अपनी संहिता को स्वाभाविक बनाने लगती है, इसलिए उसे बार-बार देखना पड़ता है। इसीलिए बार्थ एक क्रान्तिकारी नतीजे पर पहुँचे कि संरचनावाद एक पद्धति, वह एक कर्म है, व्यवहार है, वह 'पाठ का उन्मुक्त व्यवहार' है। वह एक सतत पाठ है। बार्थ ने अस्तित्ववाद की नायकत्व के नैतिक सिद्धान्त को चुनौती दी। 'राइटिंग डिग्री जीरो' में बार्थ लिखते हैं साहित्य एक संचार है, भाषा है, पाठ है। बार्थ साहित्य में समान्य का अंत देखते हैं। बार्थ समस्या में साहित्य पाते हैं। रोला बार्थ 'पढ़ने' को आलोचना नहीं मानते। आलोचना कर्म पढ़ने के कर्म से भिन्न है। एक

अच्छा पाठ, अवधानपूर्वक पाठ, अधिक से अधिक एक पाठ का शब्दशः दुहराव - भर है। आलोचन का काम 'एक पाठ के लिए एक अर्थ का निर्माण' है। सिर्फ 'अर्थ खोलना नहीं'। इसका कारण है कि पाठ की संरचना 'एक अर्थ' नहीं रखती। संरचना के चिह्न और संहिता अनेकार्थ की स्थिति पैदा करती है। 'पाठ' हमेशा बहुलार्थी या अनेकार्थी होता है। संरचनावाद की यह व्यवस्था जो पाठ से अर्थ की उपस्थितियों को चिह्नों की स्वतंत्र लीला पर निर्भर मानती है, वहाँ किसी के निजी अर्थ की कोई गुंजाइश नहीं है। यही वर संरचनावादी सिद्धांत में विषयी (लेखक) का विकेंद्रण है। यह यही वर बिंदु है जहाँ बार्थ अचानक उत्तर-संरचनावादी सूत्रों के संकेत देते हैं जिनका पूर्ण विकास जॉकदेरिदा के विमर्श में देखने को मिलता है।

17.3.2 उत्तर-संरचनावाद

उत्तर-संरचनावाद सिर्फ एक पद्धति की तरह नहीं आया, वह एक दार्शनिक रूप की तरह भी आया। यूरोप के मौजूदा चिंतन पर इसकी गहरी छाप है और आज के भूमंडलीय यथार्थ में यह एक भूमंडलीय अवधारणा की तरह पढ़ा जा सकता है। उत्तर-संरचनावाद, उत्तर औद्योगिक युग की राजनीति भी कही जा सकती है और विखंडन भी। उत्तर-संरचनावाद विचार-पद्धति सातवें दशक के मध्य में आरम्भ हुई। विकराल राज्यसत्ताओं के सामने मानव अधिकारों की माँग, आधुनिक जकड़बंदी से छटपटाकर पीछे लौटकर धार्मिक एवं तत्त्ववादी चिंतन में शाखा ढूँढ़ना मूलतः उत्तर - आधुनिक स्थितियों को स्वीकार करना था।

उत्तर-संरचनावाद संरचनावाद के सीमान्तों की प्रतिक्रिया में शुरू हुआ। लेवीस्ट्रॉस द्वारा विकसित संरचनावाद में निरंकुशता के तत्त्व सबसे पहले (1950) लाकाँ ने खोजे। लाकाँ ने बताया कि स्ट्रॉस की पद्धति मनुष्य समाज को अतंतः एक मशीन की तरह सुपरिभाष्य और कथनीय बनाती है। यह खतरनाक है। वह मनुष्य को केंद्र में नहीं रखती। 1981 के असपस मिशेल फूको ने 'मैडनेस एंड सिविलाइजेशन' में अच्छी तरह सिद्ध किया कि किस तरह हमारे आधुनिक विज्ञान एवं समाज विज्ञान दमनकारी है। लाकाँ ने मनोविज्ञान में, फूको ने सांस्कृतिक रूपों के क्षेत्र में और सुई अल्थरु ने सिद्धान्त के क्षेत्र में यात्राएँ सातवें दशक में शुरू कीं। लेकिन उत्तर-संरचनावादी दिशा में सबके निर्णायक दस्तावेज सातवें दशक के मध्य में जॉक देरिदा के 'स्पीच एंड फिनोमिना', 'राइटिंग एंड डिफरेंस' तथा 'आफ ग्रामाटोलॉजी' जैसे अध्ययन के रूप में आया। बार्थ 'पाठ' के अर्थनिर्माण के लिए 'पाठ' को 'सघन' नहीं करते बल्कि फैलाते - बिखेरते हैं। पढ़ने के दौरान पाठक द्वारा चुने गए किसी पद 'वाक्य' मुहावरे से पाठ की संरचना संभव है। इसी से अर्थ की बहुलता मिलती है। बार्थ बताते हैं कि साहित्य के निर्माण में पाँच संहिताएँ काम करती हैं। पहली संहिता व्याथावादी होती है और 'पाठ' में संभव होती है। दूसरी, चिह्न संहिता (सेमी कोड) जो मूल विचार को तय करती है। तीसरी है प्रतीकात्मक संहिता जिससे अर्थ बहुमुखी होता है। चौथी संहिता कार्य-व्यवहार की होती है। पाँचवीं संहिता सांस्कृतिक वातावरण की होती है। इन संहिताओं के भीतर ही 'पाठ' अपने 'अर्थ'

का निर्माण करता है। रोला बार्थ कहते हैं कि ये पाँच संहिताएँ एक ऐसा संजाल बनाती हैं, जिसमें से होकर सारा पाठ गुजरता है। संक्षेप में बार्थ के संरचनावादी सिद्धान्तों ने पाठ को एक निर्विकल्प स्थिति प्रदान की। विचारधारा और पॉजिटिविज्म ने एक एक दौर में अपने को 'स्वभाविक' बना लिया था, संरचनावाद ने उसे असवाभाविक और अवांछित करार दिया। 'रचना' पाठ बनी जिसे 'निर्मित' किया जा सकता है। और जिसे पुनर्निर्मित किया जा सकता था और जरूरी होने पर जिसे तोड़ा (विखंडित किया) जा सकता है। विखंडन से पाठ के 'निर्माण की प्रविधि' को समझा जा सकता है, 'पाठ का निर्माण' ही असली पाठ है, लेखकीय अनुभवों तक पहुँचना नहीं।

विखंडन क्या है? इस पर देरिदा कहते हैं विखंडन विचार को निरस्त करता चलता है। विचारधारा जो पश्चिमी दर्शन का सत्तावादी भ्रम है। विचारधारा यानी तर्क जो पश्चिमी समाज का संचालक रहा है। विखंडन इस तर्क को व्यर्थ करता है। विखंडनवादी दृष्टि में सब बराबर है। आलोचना, दर्शन, भाषाविज्ञान, नृविज्ञान आदि तमाम मानव विज्ञान देरिदा के लिए विखंडन वस्तु है। सभी कुछ देरिदा का लक्ष्य है। पॉल द मान ने 'ब्लाइंडनेस ऐंड इनसाइट' में नव्यालोचनाओं का विखंडन किया है और पाया कि रचना में आधारभूत रूपकों को ढूँढने के लिए नव्यालोचना को पढ़ना अंततः एक ऐसी 'अंधता' है जो नव्यालोचना की अंतर्दृष्टि में ही निहित है। देरिदा ने कहा कि यह पश्चिमी विमर्श का अपराध है कि वह भाषा के खेल को नष्ट करता है, उसे एक अर्थ प्रदान करना चाहता है जैसा कि 'वाक्' (वाणी) में होता है। वाक् में (वाचित) एक अर्थ उपस्थित होता है वक्ता का आशय। 'विमर्श' की प्रक्रिया को इसके लिए उलटना जरूरी है। विखंडन में पाठ - प्रक्रिया अलग होती है। पढ़ने का ढग बदलना होता है। साहित्यक पाठ (टैक्सट) को अलग से पढ़ा जाना होता है पाठ इसलिए नहीं पढ़े जाने चाहिए कि अंतर्दृष्टि खोजनी है, बल्कि उन अंधताओं को पाना है जो अंतर्दृष्टि की सीमा होती है। पाठ की 'स्वायत्त्रता' को इस क्रम में तोड़ दिया जाता है। यह विखंडनात्मक पाठ ही देरिदाई विखंडन का स्रोत है। देरिदा के अनुसार 'पाठक' एक कार्रवाई है, 'भेद' की भाषा है। 'भेद' स्थापना है। यही अलग चीज है। देरिदा बताते हैं कि बोला गया शब्द (वाक्) बोलने वाले की दरकार रखता है ताकि प्रामाणिकता पा सकें। सासूर लिखित को जीवनरहित भाषा मानता है। बोला गया शब्द सीधा अर्थ देता है। लेकिन लिखित शब्द की सत्ता (शुद्ध उपस्थिति) को खो देता है। देरिदा कहते हैं कि लेखन भाषा की पूर्वशर्त है। वह 'वाक्' से पहले रहती है। इसलिए लेखन को दायम नहीं कहा जा सकता। लेखन, देरिदा के लिए एक स्वतंत्र खेल या लीला है। लीला का यह तत्व, अनिश्चय का यह तत्व संचार के हर रूप में मौजूद रहता है। लेखन इसीलिए अर्थ का 'अनंत दबपदला' ('डिस्प्लेसमेंट') है जो भाषा का अनुशासन करता है और इकहरा नहीं रहने देता और उसे स्वतः प्रामाणिक बनाता है। सारी समस्या शब्दार्थ की है। 'शब्द' के बाद 'अर्थ' कि अर्थ के बाद है 'शब्द' ? 'लिखित' को दायम रखने के प्रयत्नों को देरिदा पश्चिमी दर्शन के इतिहास में खोजकर सिद्ध करते हैं। देरिदाइस तरह भाषा और विचार के सम्बन्ध को 'उलट' देते हैं। यही विखंडन है। यह निर्णायक है। यही विखंडन की हिंसा है। यही देरिदा संरचनावाद को 'विखंडन'

की पूर्व - शर्त कहते हैं। सासूर ने संरचना को उस बिन्दु तक पहुंचाया जहाँ वह अपनी संरचना में कैद हो गया। 'विखंडन' एक ऐसी रणनीति बनाता है, जो दिए गए 'पाठ' के तत्वों का क्रम उलटा कर देता है और उन विरोधों (तनाव) को तोड़ देता है जिस पर 'पाठ' टिका होता है विखंडन इस प्रकार एक कार्रवाई (स्ट्रैटेजिक) है। पढ़ने की कार्रवाई। पढ़ना जो पाठ से बंधा है और जो 'बंद' नहीं है। देरिदा के लिए लेखन एक ही साथ तमाम सांस्कृतिक कर्म का स्रोत है और अपने भीतर निहित ज्ञान को 'दबाने' वाला भी है। विखंडन इस 'लेखन' की कैद में दब रहे 'अर्थ' को मुक्ति देता है। इसीलिए देरिदा कहते हैं 'पाठ' के बाहर कुछ नहीं है।

देरिदा की मौलिकता यह है कि उनका विखंडन सत्यता का दावा करनेवाले 'तर्क' को उसी के विरोध में खड़ा करके देखता है और उस में छिपे हुए अर्थ को खोजता है। यह देरिदा की 'पाठात्मक रणनीति' (पढ़ने का ढंग) है।

देरिदा संरचनावाद को एकदम व्यर्थ नहीं कहते। वे सिर्फ यह बताते हैं कि अंत में संरचनावाद भाषा की कैद में बंद हो जाता है। देरिदा मानते हैं कि संरचनावाद ने इस प्रश्न को लगभग अंतिम ऊँचाई से उठाया कि क्या भाषा चीजों को तय करती है? देरिदा कहते हैं कि भाषा चीजों को स्थिर करते हुए स्वयं जब स्थिर होने के लिए अभिशप्त हैं तो वह अपनी कैद बना लेती है। संरचनावाद की यही बड़ी सीमा है कि वह अपनी कैद अपने-आप है।

डॉ. सुधीश पचौरी के अनुसार उत्तर - आधुनिक विखंडन के कुछ सूत्र इस प्रकार हैं।

1. क्रम का उलटना, विखंडन का प्रथम कदम है। क्रम उलटने से जो शून्य बनते हैं उनमें हस्तक्षेप किया जा सकता है। कार्य-कारण श्रृंखला उलटने से विखंडन शुरू होता है।
2. विखंडन करते हुए हमें देखना होगा कि पाठ जो बात कहना चाहता है उसे 'दबाता' कैसे है? इसके लिए विखंडन उन्हीं सिद्धान्तों का सहारा लेता है जिन्हें वह विखंडित करता है।
3. कारण - कार्य के उलटने से कार्य - कारण बन जाता है। कार्य से कारण की ओर आया जाता है।
4. लेखन वाक् का पूरक है। वाक् स्वयं एक पूरक हुए पाठ लेखन का पूरक है। पूरकों की एक श्रृंखला है साहित्य और कुछ नहीं।
5. विखंडन पाठ का केंद्र नहीं ढूँढ़ता ताकि उसकी सारी समस्याएँ एक बार में ही समाप्त हो जाएँ।
6. पार्थक्य वह गति है जिससे भाषा बनती है।

7. इतिहास कोई विशेष अधिकार वाला क्षेत्र नहीं, वह भी एक पाठ है।
8. उलटना एक खेल है। अर्थ इसी में छिपा है।
9. 'विखंडन' कोई सिद्धान्त नहीं है जो किसी शास्त्र का रास्ता दिखाए।
10. प्रतिरोपण या कलम लगाना ही असली हस्तक्षेप है। 'पठन' स्वयं एक प्रतिरोपण है।
11. प्रतिरोपण की यह पद्धति विचार की परम्परागत प्रक्रिया को भंग कर देती है और नई प्रक्रिया शुरू करती है। वह नियों, चित्रों, शब्दरूप, और अर्थ के नए संबंध बनाती है।
12. लेखन इस तरह एक पूरक कर्म है। पूरक यानी एक प्रयत्न। बाहर से किया गया। पूरक ही 'पार्थक्य' पैदा करता है।
13. विखंडन में परस्पर विलोम तत्व इस प्रकार चलते हैं - उपस्थिति - अनुपस्थिति। वाक् लेख। दर्शन - साहित्य। शाब्दिक अलंकारगत। केंद्रीय - उपकेंद्रीय या हाशिए वाले। उपस्थिति अर्थ के मुकाबले अनुपस्थिति अर्थ, वाणी का विलोम लेखन, दर्शन का विलोम साहित्य, शब्दों की जगह अलंकार, केंद्र के विलोम उपकेंद्र (अथवा इसका उलटा क्रम) हर वक्त रहता है।
14. शास्त्रहीनता विखंडन की मूल विशेषता है हर विज्ञान को 'पाठ' की तरह 'पढ़ना' और उसकी एक निजी पद्धति विकसित करना एक शास्त्रहीन स्थिति पैदा कर देता है।
15. दर्शन केंद्रवादी है। साहित्य उभयकेंद्रवादी। दर्शन एक सत्य, एक, तर्क, एक व्यवस्था देखता है, साहित्य हर बार नया अर्थ।
16. विखंडन अनुपस्थिति अथवा, परिव्यक्त या निकाल दिए गए में दिलचस्पी रखता है।
17. विखंडन स्त्रियों, दलितों, कवियों, देवताओं, तथा पागलो के पास भी 'सत्य' का होना मानता है। वह मानता है कि औरतें कवि, देवता, पागल, हाशिए के लोग, सब जिन व्यवस्थाओं में रहते हैं, वे उनमें अपनी हाशियाकृत स्थिति से 'सत्य' प्राप्त कर सकते हैं। वे ऐसे सत्य खोज सकते हैं जो 'सर्वानुमति' को गलत सिद्ध करते हैं और जो अभी तक के रूप (समीक्षा) में दिखाई नहीं दे सकते।
18. पाठ का अंदरूनी तर्क वैसा ही है जैसा पौधे की 'कलम लगाना' (प्रतिरोपण) पौधे में बाहर से नई कलम लगाना, जोड़ना, घटाना, साफ करना रोपना यही विखंडन की रणनीति की कार्रवाई है।

19. सत्य संरचना में भी हो सकता है और वहाँ भी जहाँ वह संरचना नहीं है। सत्य जितना उपस्थित होता है, उतना ही अनुपस्थित भी हो सकता है।
20. विंखडन सत्य का नया सिद्धान्त नहीं है बल्कि 'पाठ' का सिद्धान्त है, लेखन का सिद्धान्त है। वह उन शून्यों में जाता है जहाँ सत्य हो सकता है।
17. विंखडन कोई तयशुदा विमर्श नहीं है।
22. हरेक पाठ एक अधूरा (या गलत) पाठ (मिसरीडिंग) होता है इसीलिए हर बार पाठ नया और नया होता है।
23. विंखडन दुहराव (पाठ) बिखराव (उलटक्रम) द्वारा पैदा किया जाता है। यह एक सूत्रीय नियम नहीं देता।
24. विंखडन की मौलिकता यह है कि वह अंतिम सत्य कहने का दावा नहीं करता।

17.3.3 शास्त्रवाद

हिंदी में 'अभिव्यंजनावाद' या 'शास्त्रवाद' शब्द अंग्रेजी के शब्द 'क्लासिज्म' के पर्याय रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रारम्भ में क्लासिज्म या क्लासिक (आभिजात्यवाद) श्रेष्ठता के वाचक हो गए थे। 'क्लासिक' शब्द का व्यवहार ऐसी वस्तु रचना के लिए होने लगा जो किसी भी सभ्यता के श्रेष्ठ अंश का प्रतिनिधित्व करते हों। 'क्लासिक' शब्द की व्याख्या करते हुए डॉ. देवराज ने लिखा है कि वह रचना जो हर युग में अपनी अर्थवत्ता के साथ अपनी प्रासंगिकता बनाये रखे वह 'क्लासिक' है। इसी के समानान्तर 'आभिजात्यवाद' शब्द का व्यवहार होता है। 'शास्त्रवाद' शब्द भी इन्हीं के समानार्थी है। शास्त्रवाद प्रवृत्ति की शुरुआत अरस्तू से होती हुई होरेस तक स्थिर होती है। कविता में बुद्धि विवक एवं संयम का आग्रह शास्त्रवाद की पहचान बनें। अरस्तू के विवेचन ने शास्त्रीय नियमावली, रूप की स्थिरता और अनुशासन को अनिवार्य बनाने वाली 'शास्त्रवादी पद्धति' को प्रचलित किया। प्रारम्भ में 'शास्त्रवाद' से किसी वर्ग, सामाजिक श्रेणी एवं ऐतिहासिकता का बोध होता था किन्तु कालान्तर में 'शास्त्रवाद' का अर्थ ऐसी रचनाओं से लगाया जाने लगा जो आदर्श का अनुकरण कराने में सक्षम हों अर्थात् युग - प्रवर्तन की क्षमता रखती हों। हाँलाकि यह कोई सार्वभौमिक नियम नहीं है। 'शास्त्रवाद' में ऐतिहासिकता और नियमद्धता अनिवार्य रूप से जुड़े हुए हैं। संक्षेप में हम कुछ बिन्दुओं के माध्यम से 'शास्त्रवाद' को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

1. 'शास्त्रवाद' में मौलिक सृजन के बजाय साहित्यके प्राचीन कला रूपों के प्रति आकर्षण या उनके अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस धारा के रचनाकार ऐतिहासिक एवं प्राचीन रचनाओं के अनुवाद एवं व्याख्या करने पर ज्यादा जोर दिते हैं।

2. 'शास्त्रवाद रचना को उद्देश्यपूर्ण ढंग से रचित कृति मानता है। इस धारा में जीवन की व्यापक दृष्टि, परिष्कृत रूचि, परिष्कृत शैली, विवके - भावना, रूप - आकार के प्रति सन्तुलन एवं सादगी, सरलता के साथ महान् विचारों को ग्रहण करने की क्षमता पर बल दिया जाता है।
3. 'शास्त्रवाद' कला एवं साहित्य के वस्तुनिष्क रूप पर जोर देता है। स्वच्छन्दतावादी कला में आत्मनिष्ठता पर ज्यादा जोर होता है, वहीं 'शास्त्रवाद कला के ठोस सामाजिक आधार को ज्यादा मान्यता प्रदान करता है। 'शास्त्रवाद कला का सौन्दर्य उन सामाजिक तत्वों से स्थिर करता है जो सभी रचना को समान रूप से निर्मित करने में मदद करते हैं।
4. 'शास्त्रवाद में स्वच्छन्दतावादी भावाधिक्य की बजाय भावों के संयम एवं गरिमा पर बल है।
5. 'शास्त्रवाद' कला के निर्व्यक्तिक रूप का विरोधी होता है। वह रचना को सामाजिक आधार पर अर्थात् किसी देश की सभ्यता - संस्कृति के आधार पर विकसित करने पर ज्यादा बल देता है।
6. 'शास्त्रवाद' में व्यक्ति की अपेक्षा वस्तु को (समाज को) ज्यादा महत्व मिलता है।

'शास्त्रवाद' की कुछ अपनी शर्तें होती हैं। एक सीमा के बाद यह रूढ़ हो जाता है। शायद इसीलिए इसकी प्रतिक्रिया 'नव्य 'शास्त्रवाद' के रूप में हुई।

17.3.4 नव्य शास्त्रवाद

'शास्त्रवादी चिंतन वस्तुतः प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य चिंतन की देन था। हांलाकि उसका विस्तार आधुनिक काल तक हमें देखने को मिलता है। 'शास्त्रवाद के नये रूप को 'नव्य शास्त्रवाद' कहा गया। 'नव्य 'शास्त्रवाद' कुछ अंशों में पन्द्रहवीं शती के पुनर्जागरण से भी प्रभाव ग्रहण करता है लेकिन सही अर्थों में नव्यशास्त्रवाद का विकास सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांस में हुआ। नव्यशास्त्रवाद ने शास्त्रीयता, संयम, विवके, स्पष्टता और व्यवस्था को केंद्रीय महत्व दिया। इंग्लैण्ड में सत्रहवीं शताब्दी से ही नव्य - आभिजात्यवाद का प्रभाव दिखने लगा था। बेन जॉनसन, जान ड्राइडन, इलेकजेंडर पोप तथा सैमुअल जॉनसन प्रमुख नव्य शास्त्रवादी रचनाकार के रूप में उभरे। इस वर्ग की प्रतिनिधि रचना पोप की 'एस्से ऑन क्रिटिसिज्म' हैं। शास्त्रवाद से नव्य शास्त्रवाद की भिन्नता यह रही कि इसने विवके, संयम, तथा अनुशासनप्रियता को तो स्वीकार किया लेकिन उच्चवर्गीय मानसिकता से किनारा भी किया। उच्चवर्गीय मानसिकता के बजाय नव्य शास्त्रवादियों ने लेखक के सामाजिक दायित्व पर बल दिया। इसके लिए आवश्यक था कि लेखक अपनी रचना में उच्च नैतिक और सौन्दर्यशास्त्रीय प्रतिमानों को समावेश करे। नव्य शास्त्रवादी अंग्रेजी साहित्य में तर्क, बुद्धिपक्ष की प्रधानता, संयम सन्तुलन एवं आदर्शवाद की प्रचुरता मिलती है। किन्तु नव्य शास्त्रवाद को दार्शनिक आधार 18 वीं शताब्दी में जर्मनी में मिला। गेटे, शिलर, ह्यूम पर नव्य शास्त्रवाद का व्यापक

प्रभाव पड़ा है। ह्यूम ने रचना के मानदण्ड निर्वैक्तिक, वस्तुपरक और सामाजिक होने में स्थिर किया है। डॉ.निर्मला जैन ने नव्य शास्त्रवादी इतिहास पर विचार करते हुए लिखा है - उन्नीसवीं सदी के मध्य से फ्रांस में और 19 वीं सदी के अंत तक तथा 20 वीं सदी के आरम्भ में इंग्लैण्ड तथा अमरीका में फिर से नव्य - आभिजात्यवादी प्रवृत्ति उभरने लगी। फ्रांस में सेट व्यवने क्लासिक रचनाओं का उल्लेख करते हुए नैतिकता, आदर्श, मानवीयता तथा मध्यम मार्ग को उनकी प्रमुख विशेषता माना। इसके साथ ही उन्होंने उनमें अभिकल्प की अन्विति (युनिटी ऑफ डिजाइन), समुचित निष्पादन (एक्जेक्यूशन) तथा व्यवस्था को आवश्यक ठहराते हुए सम्प्रेषणीयता और सार्वकालिकता की वकालत की। 'मैथ्यू आर्नल्ड के बाद बीसवीं शताब्दी में इर्विग बेवित, टी.एसत्र इलियट और ह्यूम ने नव्य आभिजात्यवाद को नये सिरे से पारिभाषित किया।

17.3.5 नई समीक्षा

नई समीक्षा आन्दोलन बीसवीं शताब्दी का प्रमुख अमरीकी काव्यान्दोलन है। 'साहित्यिक आलोचना में क्रान्ति युग कहे जाने वाले समय सन् 1930 से 1960 के बीच शुद्ध अकादमिक आन्दोलन के रूप में 'नयी समीक्षा' आन्दोलन विशेष चर्चित रहा। 'नयी समीक्षा' के बीज सर्वप्रथम स्पिनगार्न के सन् 1910 ईसवीं में लिखे लेख से माना जाता है। इस लेख में स्पिनबार्न ने कृति से इतर अन्य सामाजिक अनुशासनों को अस्वीकृत किये जाने की बात की थी। इसके बाद इलियट के 'द सेक्रेडवुड', मिडलटन मरे की 'द प्रास्लम ऑफ स्टाइल' और आई.ए. रिचर्ड्स के 'प्रिसिपिल ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' इत्यादि कृतियों में नयी समीक्षा की मान्यतायें अस्फुट रूप में मिलती हैं। किन्तु इसे एक आन्दोलन के रूप में प्रतिष्ठा जॉन क्रो रैसम की सन् 1941 में प्रकाशित 'न्यू क्रिटिसिज्म नामक कृति से मिला। जॉन क्रो से मिला। जॉन क्रो रैसम के अतिरिक्त इस कला आन्दोलन में एलेन टेट, आर पी ब्लेकमर, रॉबर्ट पेन वारेन, क्रिमथ बुरक्स तथा विलियम एम्पसन इत्यादि प्रमुख रूप से सक्रिय रहे। ये सभी आलोचक अलग - अलग मत रखते हैं, इसमें वैचारिक अंतर्विरोध भी हैं किन्तु कृति/रचना की केंद्रीयता के प्रश्न पर सभी एकमत है। कृतिकार, रचना संदर्भ, युगीन घटना एवं परिवेश, सहृदय की प्रतिक्रिया को स्वीकार कर 'नयी समीक्षा' आन्दोलन के समर्थक 'कृति' को ही आलोचना का केन्द्र स्थापित करते हैं। नयी समीक्षा का उदय केवल स्वच्छंदतावाद के विरोध के लिए ही नहीं हुआ। 19 - 20 वीं शती के आरम्भ में ज्ञान - विज्ञान की विविध शाखाओं / अनुशासनों के व्यापक प्रसार ने भी नई समीक्षा को नई अंतदृष्टि प्रदान की। नई समीक्षा 20 वीं शताब्दी के प्रमुख साहित्यिक आन्दोलनों में महत्पूर्ण स्थान रखना है। आइए, अब हम नई समीक्षा के प्रमुख तर्कों को देखें।

1. नई समीक्षा में कृति को केंद्र में स्थापित किया गया। कृति की समझ के लिए साहित्य की पृष्ठभूमि (रचनाकार का परिचय, व्यक्तित्व) एवं ऐतिहासिक - सामाजिक वातावरण की अनिवार्यता को अप्रासंगिक करार दिया गया। इसलिए नई समीक्षा में कृति को स्वायत्तता प्रदान की गई। लेकिन नई

समीक्षा की स्वतंत्रता कलावादी स्वायत्तता से भिन्न है। यहाँ कृति स्वायत्त तो है लेकिन वह मानवीय या नैतिक मूल्य की प्रतिष्ठा और आस्वाद के साथ जुड़ी रहती है। नई समीक्षा में कृति के सत्य को ग्रहण करने की अद्वितीय विधि के रूप में प्रस्तुत किया गया। कृति की वस्तुनिष्ठ समझ के लिए नई समीक्षा के सिद्धान्तों ने इस पर बल दिया कि पाठक/आलोचक को, केवल रचना के भीतर प्रयुक्त वर्ण, शब्द, बलाघात, पंक्तियों, बिंबों, प्रतीकों आदि के बीच उपस्थित संबंधों की व्याख्या करनी चाहिए। कुल मिलाकर नई समीक्षा की पहली स्थापना यह है कि रचना को रचना रूप में ही ग्रहण किया जायें, किसी दर्शन, इतिहास या विचारधारा के माध्यम रूप में नहीं।

2. नई समीक्षा ने रचना के घनिष्ठ पाठ की परम्परा को स्थापित किया। घनिष्ठ पाठ का उद्देश्य साहित्येत्तर तत्वों से रचना को मुक्त करके कृति की आंतरिक संहिति का विश्लेषण करना था। इस संदर्भ में एजरा पाउंड की ए.बी.सी.ऑफ रीडिंग, एफ.आर.लीविस की, 'हाउ टु रीड ए पेज' और इंटरप्रेशन इन टीचिंग आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

3. नई समीक्षा में कृति को भाषिक संरचना के रूप में देखने का आग्रह किया गया। रचना को यहाँ सम्प्रेषण की विधि कहा गया। चूँकि पत्रकारिता एवं अन्य साधनों ने भाषा को व्यापक रूप से भ्रष्ट किया है, अतः इस धारा के आलोचकों ने साहित्यिक सम्प्रेषण को तीव्र बनाने पर बल दिया।

4 नई समीक्षा के प्रारंभिक समय में मूल्यांकनपरक समीक्षा से दूरी बनाई गई। नई समीक्षा के आलोचक मूल्य की अपेक्षा प्रविधि पर अधिक बल देते थे। इनके विषयीगत अभिरूचि के निर्माण में मनोविज्ञान का हाथ था तो वस्तुनिष्ठ आलोचनात्मक प्रमिमानों के निर्माण में आधुनिक विज्ञान की भूमिका स्वीकार की गई है।

बोध प्रश्न 1

(क) निर्देश: निम्नलिखित शब्दों पर 10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1. नई समीक्षा और कृति

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. विखंडन के प्रमुख तर्क

3. शास्त्रवाद

4. नव्य शास्त्रवाद

17.4 काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

पूर्व में आपने अध्ययन किया कि संरचनावाद उत्तर - संरचनावाद जैसे आन्दोलन किस प्रकार भाषा के माध्यम से सामाजिक संरचना को समझने में हमारी मदद करते हैं, शास्त्रवाद एवं नव्य शास्त्रवाद अपने ऐतिहासिक क्लासिकीय संयम एवं औदारम्य में समाज को देखने का आग्रह करते हैं। वहीं इसके विपरीत 'नई समीक्षा' को कोई भी काव्येत्तर प्रतिमान स्वीकार नहीं है। आलोच्य आन्दोलनों की प्रवृत्तियों से आप परिचित हो चुके हैं। आइए अब हम उनके काव्यगत अवदान एवं सीमाओं से परिचित हों।

17.4.1 संरचनावाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

पूर्व में हमने अध्ययन किया कि संरचनावाद के मूल में सासूर का भाषा संबंधी अध्ययन है। प्रसिद्ध नृतत्ववेत्ता लेवी स्ट्रोस ने अपनी संरचना के लिए सासूर से प्रेरणा ग्रहण की है। आदिम मनुष्यों, कबीलों और मिथकों की संरचना की तलाश स्ट्रोस, याकोजसन के मॉडेल पर करता है। विश्व के तमाम मिथकों का अध्ययन करते हुए स्ट्रोस उनके सर्वमान्य नियमों को स्पष्ट करता है। एक ही मिथके के भिन्न-भिन्न रूप वाक् है तो मूल मिथक भाषा हैं वाक् के आधार पर भाषा के अपने नियमों को खोजना ही संरचना है। संरचनावाद के अध्ययनकी उपयोगिता इस रूप में देखी गई कि संरचनावाद मुख्य रूप से सांस्कृतिक क्षेत्रों पर लागू होता है। संरचनावाद के अनुसार भाषा सबसे बुनियादी और सर्वाधिक विश्वव्यापी सांस्कृतिक उत्पाद होती है। संरचनावाद ने सांस्कृतिक स्तर पर, नृ - विज्ञान के स्तर पर मानवीय सभ्यता को समझने में हमारी मदद की। लेकिन इस आन्दोलन की सीमाओं की ओर भी कई लोगों का ध्यान गया। कई लोगों को इसके 'संरचनावाद' शीर्षक पर आपत्ति है। इसके अतिरिक्त आपत्ति की कुछ अन्य बिन्दु हैं प्रथम, इसमें ऐतिहासिक, प्रत्यक्षवादी, अस्तित्ववादी जैसी अवधारणाओं के लिए जगह नहीं है। द्वितीय, इसे एक फैशन के रूप में स्वीकार किया गया। जो चीज पूरी तरह समझ में न आए उसे संरचनावाद कह दिया गया। तीसरी आपत्ति यह की गई कि, संरचना की अवधारणा गणितीय ज्यादा है। साहित्य और दर्शन जैसे क्षेत्रों में इसकी बहुत उपयोगिता नहीं है, संरचनावाद पर डॉ. निर्मला जैन की टिप्पणी है - कुल मिलाकर साहित्यिक आलोचना में इस सिद्धान्त का न निश्चित रूप बन सका न व्यवहार। इसका मुख्य कारण भाषाशास्त्री तकनीकी के साथ मनोविश्लेषण और नृतत्व विज्ञान जैसे विषयों पर इसकी निर्भरता थी।''

17.4.2 उत्तर- संरचनावाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

उत्तर - संरचनावाद संरचनावाद का अगला चरण है। सातवें दशक में जॉक देरिदा ने उत्तर - संरचनावाद का प्रवर्तन किया। देरिदा के सिद्धांतों का पाल डी मन ने विकसित किया। उत्तर - संरचनावाद, संरचनावाद के भाषा संबंधी चिंतन से प्रभावित भी है, लेकिन एक सीमा के बाद वह उसे अस्वीकार कर देता है। डॉ बच्चन सिंह ने लिखा है ! ” उत्तर - आधुनिकतावाद भविता (विकमिंग) का दर्शन है, न कि संरचनावादियों की तरह अस्ति (वीइंग) का। पहला गत्मात्मक है दूसरा स्थिर। संरचनावाद और उत्तर - संरचनावाद का एक अन्तर यह भी है कि पहले में वैयक्तिकता के लिए कुछ अवकाश है पर दूसरे में नहीं है। ” उत्तर - संरचनावाद ने संरचनावाद की इस कमी की ओर भी ईशारा किया जिसमें उसके केंद्र में मनुष्य नहीं है। उसने संरचनावाद के भाषा में कैद हों जाने की सीमा से भी अपने को मुक्त किया। उत्तर - संरचनावाद ने आधुनिकता के खतरे की ओर गंभीरता पूर्वक हमारा ध्यान आकृष्ट किया। उत्तर - संरचनावाद में 'विखंडन' पर बल दिया गया है। 'विखंडन' विचार को निरस्त करता है क्योंकि वह पश्चिमी दर्शन का सत्तावादी विर्मश रहा है। उत्तर - संरचना ने केंद्र को तोड़ा। उसने बंधे - बंधाएँ किसी भी सिद्धान्त को तोड़ कर नए पाठ' की आवश्यकता पर बल दिया। वह यह मानकर चलता है कि पाठ में अर्थ के अनन्त बिन्दु हैं और वे दबाये गए हैं अतः विखंडन का काम 'अनुपस्थिति की खोज' है। देरिदा कहता है कि निशान या पदचिह्न कुछ हैं जिससे अनुपस्थिति तक पहुँचा जा सकता है। इस प्रकार उत्तर - संरचनावाद ने भाषा - संस्कृति के उन बिन्दुओं पर दृष्टि डाली जो संरचनावाद या आधुनिकता में छोड़ दिये गये थे। उत्तर - संरचनावाद ने 'पाठ' को खुला कर दिया, विचारधारा के नाम पर निश्चित अर्थ की अनिवार्यता को तोड़ दिया तथा हाशिए के लोगों को केंद्र में खड़ा किया। बावजूद इस आन्दोलन के भी अपने अंतर्विरोध है। विचारधारा और सैद्धान्तिकी के अभाव में यह अराजक और मनमाना हो जाता है हिन्दी आलोचना पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के कारण 'पाठ' की मनमानी व्याख्याएँ हुई हैं, जो चिन्तनीय है।

17.4.3 शास्त्रवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

शास्त्रवाद के परिचय के क्रम में आपने अध्ययन किया कि यह आभिजात्यवादी एवं क्लासिकल परम्परा को अपने भीतर समेटे हुए है। 'शास्त्रवाद' का तात्पर्य ही है कि यह आंदोलन शास्त्रीय मान्यताओं (अतीत, परम्परा, ऐतिहासिक) को अपने केंद्र में रखकर चलता है। शास्त्रवाद जीवन के वैशिष्ट्य और स्थायित्व को प्रस्थान बिन्दु मानकर चलता है। शास्त्रवादी मान्यता मूलतः आस्था - विश्वास को पुनः पुनः सृजित करने पर बल देती है। इस आन्दोलन की बड़ी देन रह रही है। कि इसने काव्य एवं कलाके सौन्दर्यशास्त्रीय प्रतिमान निर्मित किए हैं। शास्त्रवाद ने वस्तुनिष्ठता, गरिमा एवं स्वच्छता पर जरूरत से ज्यादा ही महत्व एवं जिसके कारण कहीं कहीं यह पुराने युग का काव्य -

प्रतिमान दिखने लगता है। स्वच्छन्दतावाद के उदयकी पृष्ठभूमि में तत्कालीन परिस्थिति के साथ - ही - साथ शास्त्रवादी मान्यताओं से असंतोष भी रहा है।

17.4.4 नव्य - शास्त्रवाद: अवदान एवं सीमाएँ

नव्य - शास्त्रवाद की पृष्ठभूमि का विवेचन करते हुए डॉ निर्मला जैन ने लिखा है 'कल्पना तथा स्वतंत्रता क्रमशः जो अराजक रूप ग्रहण करने लगी थी उसकी प्रतिक्रिया शास्त्रवाद या आभिजात्यवाद के पुनरूत्थान के रूप में हुई। शास्त्रवाद के इस नये उन्मेष को 'नियो - क्लासिसिज्म' अर्थात् नव्य - आभिजात्यवाद' कहा गया। इस प्रवृत्ति का बीजारोपण लगभग पुनर्जागरण के समानांतर हो चुका था। पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य में कुछ विद्वान अपनी ग्रन्थ संपदा के साथ इटली में आकर बस गए। वहीं इन ग्रन्थों के अध्ययन, अनुवाद और पुनर्व्याख्या का सिलसिला आरंभ हुआ। इससे जो बौद्धिक वातावरण बना उसमें इतावली मानवतावादियों के हाथों साहित्य और कला को धार्मिकता से मुक्त कर स्वतंत्र साधना का अवसर मिला। किन्तु जब यह मुक्ति अराजकता में बदलने लगी तब एक बार फिर आभिजात्यवादी मूल्यों की स्थापना का दौर आरम्भ हुआ। 'स्पष्ट है कि पुनर्जागरणकालीन प्रवृत्तियों के हास के दौर में नव्य-शास्त्रवाद का पुनर्गठन हुआ। नव्य - शास्त्रवाद ने सर्जन की स्वतंत्रता के नाम पर व्यापत अशास्त्रीयता के विरुद्ध शास्त्रीयता और संयम को नये सिरे से प्रतिष्ठित किया। स्वच्छन्दतावादी संवर्गों तथा भावावेगों की अनियंत्रिता अवस्था के विरुद्ध नव्य - शास्त्रवाद ने विवके स्पष्टता और व्यवस्था को नये सिरे से स्थापित किया। शास्त्रवाद और नव्य - शास्त्रवाद की बुनियादी मान्यताओं में बहुत अन्तर नहीं है। शास्त्रवाद में जहाँ अनुकरण पर बल दिया गया वहीं नव्य - शास्त्रवाद में मूल्यों और आदर्शों के अनुसरण को प्राथमिकता दी गई। नव्य - शास्त्रवाद ने कृति की वस्तुनिष्ठता पर शास्त्रवाद से ज्यादा बल दिया। नव्य - शास्त्रवाद ने शास्त्रवाद की अपेक्षा कट्टर शास्त्रबद्धता से क्रमशः अपने को मुक्त किया। नव्य - शास्त्रवाद ने सिद्धान्त - निरूपण में तर्क, विवक एवं युगानुरूपता को ज्यादा महत्व दिया। क्रमशः आगे नव्य - शास्त्रवाद में अनुभूति तथा संवेदनशीलता के महत्व को स्वीकार किया गया।

17.4.5 नई समीक्षा: अवदान एवं सीमाएँ

'नई समीक्षा' की प्रमुख मान्यताओं के अध्ययन के क्रम में हमने देखा कि 'नई समीक्षा' आन्दोलन के मूल में साहित्यिक - सांस्कृतिक कारणों के अलावा विज्ञान द्वारा प्रस्तुत नये सत्यों के आलाके में काव्य की भूमिका की खोज भी थी। नयी समीक्षा ने एक ओर स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का विरोध किया दूसरी ओर नैतिक साहित्य के बाहरी आरोपण का विरोध किया। इसने मार्क्सवादी समीक्षा के काव्येतर उपकरणों का भी विरोध किया। अर्थ यह कि नई समीक्षा एक विशेष सामाजिक आवश्यकता की पृष्ठभूमि के बीच अस्तित्व ग्रहण कर रही थी। 'नई समीक्षा' ने आलोचना में पाठ के गहन अध्ययन पर उस वक्त बल दिया जब काव्य की पृष्ठभूमि काव्य से महत्वपूर्ण घोषित की जाने लगी थी। साहित्य के सामाजिक अंतर्सम्बन्ध की प्रक्रिया में कृति की उपेक्षा होने लगी थी, ऐसे समय

में नई समीक्षा ने कृति को केन्द्र में स्थापित किया। साहित्यिक भाषा की सम्प्रेषणीयता को भी नई समीक्षा ने स्थापित किया।

नई समीक्षा अपने ऐतिहासिक उत्तरदायित्व का वहन करके अपने अतिवाद का शिकार होने लगी। क्लॉथ ब्रुक्स जैसे समीक्षक को यह कहना पड़ा कि कविता के तनावों और संघटनों को समझने के लिए हमें कविता के बाहर जाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। इलियट ने तो 'नीबू निचोड़' आलोचक कहकर नई समीक्षा के सिद्धान्तकारों को कटघरे में खड़ा किया। आर.एस.क्रेन जैसे आलोचकों ने रूप - रचना केंद्रित दृष्टि और प्रतिमान को अधूरा बताया। उसने कहा कि रूप या संरचना के विश्लेषण की यह पद्धति लघु रचनाओं के लिए भले ही उपयुक्त हो किन्तु वृहत् काव्यों, प्रबन्ध रचनाओं, नाटक इत्यादि के लिए अपर्याप्त है। 1950 तक आते - आते काव्य या रचना को जाँचने के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन का दबाव बढ़ने लगा था। ऐसी स्थिति में नई समीक्षा की सीमा की ओर परवर्ती आलोचकों ने ध्यान कराया।

बोध प्रश्न 2

निर्देश: उचित शब्द भरकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. संरचनावाद को ने प्रतिष्ठित किया।
2. 'ग्रामाटोलॉजी' प्रस्तक के लेखक है।
3. आन्दोलन में विखंडप की प्रविधि पर बल दिया गया है।
4. में कृति को केंद्रीयता मिली।
5. आभिजात्यवाद का दूसरा नाम भी है।

बोध प्रश्न 3

निर्देश: नीचे दिए गये वाक्यों में सही / गलत का चुनाव उचित चिह्न (□/□) लगाकर करें।

1. जॉक देरिदा संरचनावाद का जनक कहा गया है। ()
2. आई. ए. रिचर्ड्स नई समीक्षा का आलोचक है। ()
3. नई समीक्षा में पाठ के गहन अध्ययन पर बल है। ()
4. शास्त्रवाद में ऐतिहासिक पर बल है। ()
5. नई समीक्षा में 'कृति' केन्द्र में है। ()
6. 'नई समीक्षा' में भाषा को महत्व मिला है। ()

बोध प्रश्न 4

निर्देश: 'क' और 'ख' कॉलम का उचित मिलान कीजिए।

'क'	'ख'
आन्दोलन	रचनाकार

1.	उत्तर - आधुनिकता	अलेक्जेंडर पोप
2.	संरचनावाद	जॉन क्रो रैनसम
3.	शास्त्रवाद	सासूर
4.	नई समीक्षा	अरस्तु
5.	नव्य - शास्त्रवाद	जॉक देरिदा

17.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आप ने पढ़ा की -

फर्डोनांद सासूर ने भाषा में संरचनावाद की नींव डाली। सासूर के अनुसार भाषा एक व्यवस्था है। वह चिह्नों की निर्मिति है। चिह्न जो मनमाने और भेदपरक होते हैं। एक भाषाई चिह्न में दो तत्व होते हैं। पहला तत्व व्यंजक है और दूसरा व्यंग्य। चिह्न के ये दो तत्व नियमरहित हैं। शब्द अर्थ की परस्परता का मनमाना अथवा नियमरहित होना ही वह तत्व है जो सासूर ने भाषा विज्ञान और संरचनावाद को दिया।

संरचना क्या है? संरचना स्थापत्य कला में, विभिन्न अंगों की व्यवस्था का नाम है, जिसमें हर चीज एक - दूसरे से सम्बद्ध हो जाती है, जिसमें अलग - अलग तत्व एक दूसरे से जुड़ जाते हैं, जिसमें एक निश्चित रूप उभरता है, जो अनेक स्तरीय संरचना के लिए 'मॉडल' यानी आदर्श होता है अंतिम संरचना होता है। यह अंतिम संरचना जो हर छोटी -से- छोटी संरचना में होती है, 'अर्थ' का केन्द्र होती है। वह हर चीज को मायने देती है।

उत्तर-आधुनिकता, का आरम्भ सातवें दशक के मध्य में हुआ। संरचनावाद भाषाई कैद में बंद हो गया था, उत्तर - संरचनावाद ने किसी वाद, विचारधारा से पाठ को मुक्त कर लोकतांत्रिक स्वरूप का निर्माण किया।

उत्तर-आधुनिकता, उत्तर - संरचनावाद का आन्दोलन है। इसे विखंडन भी कहा गया है। विखंडन पाठ को उसके केन्द्र से मुक्त करता है। विखंडन अनुपस्थिति की तलाश करता है। इस दृष्टि समाज में हाशिए के लोग केंद्र में आ जाते हैं या सब बराबर हो जाते हैं। शास्त्रवाद का आन्दोलन फ्रांस में शुरू हुआ। शास्त्रवाद रचना में आदर्श, नैतिकता ऐतिहासिकता, वस्तुनिष्ठता एवं संयम पर बल देता है। ऐसी रचनाएँ प्रायः क्लासिक रचनाओं की श्रेणी में आती हैं।

17.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 2 के उत्तर -

-
- (1) - सासूर
(2) - जॉक देरिदा
(3) - उत्तर आधुनिकता
(4) - नई समीक्षा
(5) - शास्त्रवाद

बोध प्रश्न 3

- (1) - ×
(2) - ✓
(3) - ✓
(4) - ✓
(5) - ✓
(6) - ✓

बोध प्रश्न प्रश्न 4

- (1) - जॉक देरिदा
(2) - सासूर
(3) - अरसु
(4) - जॉन क्रोरेन्सम
(5) - एलेक्जेन्डर पोप

17.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - निर्मना जैन/कुसुम बाँठिया, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
2. काव्य चिंतन की पश्चिमी परम्परा - निर्मना जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

-
3. आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द - बच्चन सिंह वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
 4. आलोचना से आगे - सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
-

17.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नयी समीक्षा के प्रतिमान - निर्मला जैन
 2. न्यू क्रिटिसिज्म एंड थयरी - नरेशचन्द्र
 3. आलोचक और आलोचना - बच्चन सिंह
 4. माडर्न क्रिटिसिज्म एंड थयरी - डेविडलाज
-

17.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. संरचनावाद एवं उत्तर संरचनावाद की मूलभूत मान्यताओं एवं विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिए।
2. 'नई समीक्षा' के मूलभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 18 स्वच्छंदतावाद, बिंबवाद, प्रतीकवाद, यर्थाथवाद, अतियर्थाथवाद, दादावाद, शैलीविज्ञान

- 18.1 प्रस्तावना
- 18.2 उद्देश्य
- 18.3 आलोचनात्मक संदर्भ
 - 18.3.1 स्वच्छंदतावाद
 - 18.3.2 बिंबवाद
 - 18.3.3 प्रतीकवाद
 - 18.3.4 यर्थाथवाद
 - 18.3.5 अतियर्थाथवाद
 - 18.3.6 दादावाद
 - 18.3.7 शैलीविज्ञान
- 18.4 काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 18.4.1 स्वच्छंदतावाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 18.4.2 बिंबवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 18.4.3 प्रतीकवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 18.4.4 यर्थाथवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 18.4.5 अतियर्थाथवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 18.4.6 दादावाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
 - 18.4.7 शैलीविज्ञान: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ
- 18.5 सारांश
- 18.6 शब्दावली
- 18.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 18.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- 18.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 18.10 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

साहित्यशास्त्र एवं हिन्दी समालोचना की यह 18 वीं इकाई है। इसके पूर्व आपने प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र कि प्रमुख प्रवृत्तियों एवं विचारकों का अध्ययन किया। इस अध्ययन में आप ने जाना कि भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यशास्त्र पर्याप्त समृद्ध है। भारतीय साहित्य सिद्धान्त जहाँ काव्य की आत्मा के इर्द - गिर्द धूमता रहा है वहीं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त काव्य रचना की प्रक्रिया एवं प्रभाव से ज्यादा जुड़े रहे हैं। प्लेटो - अरस्तू के अनुकरण - विरेचन से लेकर इलियट के सिद्धान्त तक पश्चिमी साहित्यशास्त्र में समाज - लेखक - व्यक्तित्व - रचना प्रक्रिया इत्यादि गंभीर मुद्दों पर ही विचार होता रहा। पूंजीवाद के चरमोत्कर्ष के दौरान साहित्य एवं समाज के कई महत्वपूर्ण सिद्धान्त सामने आये। स्वच्छंदतावाद, संरचनावाद, उत्तर संरचनावाद, शास्त्रवाद, नव्य शास्त्रवाद, नई समीक्षा, बिंबवाद, प्रतीकवाद, यर्थाथवाद, अतियर्थाथवाद, दादावाद, शैलीविज्ञान जैसे आन्दोलन बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में साहित्य द्वारा सामाजिक सम्प्रेषण की प्रक्रिया की ही निष्पत्ति है।

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे कि प्रमुख आधुनिक काव्यान्दोलनों जैसे स्वच्छंदतावाद, बिंबवाद, प्रतीकवाद, यर्थाथवाद, अतियर्थाथवाद, दादावाद, एवं शैलीविज्ञान की पृष्ठभूमि एवं उनकी साहित्यिक देन का सम्बन्ध पूंजीवाद के विकास काल से है। स्वच्छंदतावादी आन्दोलन एक प्रकार का मध्यमवर्गीय युवकों द्वारा किया गया साहित्यिक विद्रोह है। 'दादावाद' इसी प्रकार सारी परम्पराओं के खिलाफ विद्रोह का आन्दोलन रहा है। शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की एक शाखा है। वस्तुतः शैलीविज्ञान साहित्यिक अभिव्यंजना की प्रविधि का अध्ययन करता है। शैलीविज्ञान ने भाषाई माध्यम से साहित्य को समझने की एक पद्धति निर्मित की। बिंबवाद एवं प्रतीकवाद के काव्यान्दोलन साहित्यिक भाषा को और अधिक सघन एवं अर्थगर्भी बनाने के प्रयास से प्रभावित रहे हैं। इसी प्रकार यर्थाथवादी आन्दोलन के पीछे मार्क्सवाद की प्रेरणा काम कर रही है एवं अतियर्थाथवादी आन्दोलन के पीछे मनोविश्लेषवाद प्रेरक रूप में रहा है।

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप जान लेंगे कि वस्तुतः प्रत्येक साहित्यान्दोलन एक विशेष सामाजिक परिस्थिति के बीच निर्मित होते हैं। सामाजिक परिस्थिति और कवि प्रतिभा के बीच जब उचित तालमेल बटै जाता है, तब कोई काव्यान्दोलन अस्तित्व ग्रहण करता है। आगे हम उपर्युक्त प्रमुख काव्यान्दोलनों की पृष्ठभूमि, उसके प्रमुख तर्क, उसके साहित्यिक अवदान इत्यादि बिन्दुओं का अध्ययन करेंगे।

18.2 उद्देश्य

यह इकाई विभिन्न काव्य आन्दोलनों से संबंधित है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

स्वच्छंदतावाद का अर्थ एवं उसकी विशेषताओं को समझ सकेंगे।

बिंबवादी आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्तों से परिचित हो सकेंगे।

प्रतीकवाद के मुख्य तर्कों को समझ सकेंगे।

यथार्थवाद एवं अतिथार्थवादी आन्दोलन के प्रमुख मतों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

दादावाद आन्दोलन की पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।

शैलीविज्ञान आन्दोलन के प्रमुख सिद्धान्तों से परिचित हो सकेंगे।

18.3 आलोचनात्मक संदर्भ

स्वच्छंदतावाद, बिंबवाद, प्रतीकवाद, यथार्थवाद, अतिथार्थवाद, दादावाद, शैलीविज्ञान आधुनिक आलोचना अपनी मुगीन पृष्ठभूमि के बीच जन्में एवं विकसित हुए। स्वच्छंदतावाद एवं यथार्थवाद का सम्बन्ध क्रिया - प्रतिक्रिया का कहा जा सकता है, लेकिन फिर भी इनके जन्म के पीछे तत्कालीन परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं। दादावाद, शैलीविज्ञान, अतिथार्थवाद, बिंबवाद, या प्रतीकवादी आन्दोलन सभी किसी - न - किसी आवश्यकता के तहत पैदा हुए थे। अपनी सीमाओं के बावजूद उपरोक्त काव्यान्दोलनों ने साहित्य एवं कला को दूर तक प्रभावित किया। आइए अब हम प्रमुख काव्य आन्दोलन के प्रमुख बिन्दुओं को समझने का प्रयास करें।

18.3.1 स्वच्छंदतावाद

'स्वच्छंदतावाद', काव्य सिद्धान्त आधुनिक युग की देन है। 'स्वच्छंदतावाद' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1792 में जर्मन आलोचक श्लेजर ने किया। उसने इसे आभिजात्यवाद का विरोधी सिद्धान्त माना। रूसो ने अपने निबन्धों में प्रकृति की महत्ता को स्थापित किया। भौतिक प्रगति को उसने विकृति कहा। सन् 1800 ईसवी में लिरिकल बैलेड्स के द्वितीय संस्करण के प्रकाशन किया। स्वच्छंदतावाद, आन्दोलन का प्रारम्भिक प्रचार जर्मनी, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड में रहा क्रमशः इसका प्रभाव यूरोप के बाहर के देशों पर भी पड़ा। हिंदी में 'रोमटिसिज्म' शब्द के हिंदी पर्याय के रूप में स्वच्छंदतावाद, शब्द का प्रयोग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया, तब से यह शब्द हिंदी समीक्षा में प्रचलित हो गया। 'स्वच्छंदतावाद' कई वृत्तियों और प्रवृत्तियों को समेटता है। समीक्षा में आज स्वच्छंदतावाद का प्रयोग अंग्रेजी साहित्य की उस प्रवृत्ति के लिए होता है जो 18 वीं सदी के अंत में फ्रांस में प्रारम्भ हुई। फ्रांस के इस स्वच्छंदतावादी काव्यान्दोलन के पूर्व इंग्लैण्ड के साहित्य में (विशेषकर एलिजावेथन युग में) स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति की झलक दिखती है। 18 वीं सदी का आन्दोलन से इस मायने में भिन्न है कि इस आन्दोलन की अगुवाई कर रहे कवियों ने अपने पक्ष को सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया। स्वच्छंदतावादी काव्यान्दोलन मूलतः साहित्यिक आन्दोलन था

किन्तु इसके पीछे सामाजिक तथा राजनीतिक कारण भी थे। साहित्यिक दृष्टि से विचार करें तो तत्कालीन परिस्थितियों में साहित्य अपने युग की जरूरतों एवं संवेदनाओं से कट रहा था। प्राचीन साहित्य - सिद्धांतों के अनुकरण ने साहित्य को कृत्रिम बना दिया था। बुद्धि तर्क इत्यादि की अधिकता ने साहित्य से भावुकता को बहिष्कृत सा कर दिया था। कुछ लोग इसीलिए स्वच्छंदतावादी आन्दोलन को तार्किकता के विरुद्ध भाव का विद्रोह कहते हैं।

स्वच्छंदतावाद की चर्चा के संदर्भ में मुख्य रूप से वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, कीट्स, बायरन के काव्य का उल्लेख किया जाता है। किन्तु लगभग इसी युग में अंग्रेजी गद्य - साहित्य जैसे सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों, लैंडर, हैजलिट एवं लैंब के निबन्धों तथा अन्य रचनाओं पर भी स्वच्छंदतावादी तत्वों का पर्याप्त प्रभाव है। आइए अब हम स्वच्छंदतावाद की प्रमुख विशेषताओं को समझने का प्रयास करें। वस्तुतः स्वच्छंदतावाद परम्परा के प्रति विद्रोह की भावना को लेकर चला। सामाजिक जीवन में परम्परा के नाम पर आभिजात्यवादी मान्यताओं का आरोपण ज्यादा था, जिसके कारण जन - जीवन में जटिलता एवं बंधन ज्यादा ही बढ़ चले थे। विज्ञान तर्क एवं विचार के बढ़ते आग्रह के कारण जीवन में भाव तत्व की उपेक्षा हो रही थी। ऐसी स्थिति में भावनात्मक रूप से आग्रहशील रचनाकारों ने सृजनात्मक स्तर पर विद्रोह किया। परम्परा की कट्टरता तथा बढ़ते तर्क के प्रति स्वच्छंदतावाद में विद्रोह किया गया। इसी कारण स्वच्छंदतावाद ने व्यक्ति पर बल दिया तथा काव्य के संदर्भ में आन्तरिकता को ही प्रधान आधार माना। स्वच्छंदतावाद रचना के धरातल पर सामाजिक परिस्थिति की उपेक्षा कवि के व्यक्तित्व को प्रधान मानता है। नैतिकता की जगह आनन्द को प्रतिष्ठित करता है। बौद्धिकता की जगह आत्मानुभूति स्थूलता की जगह सूक्ष्मता तथा प्रबन्ध की जगह गीतकाव्य को प्रतिष्ठित करता है। स्वच्छंदतावाद का सीधा अर्थ होता है - रूढ़ियों से मुक्ति। सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति का कार्य स्वभावतः क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के माध्यम से होता है इसीलिए इस काव्य आन्दोलन में व्यक्तित्व को केंद्र में प्रतिष्ठित किया गया है। किन्तु स्वच्छंदतावाद में मुख्य रूप से व्यक्तित्व के एक अंश के भाव, मनोवेग, भावना या आवेगात्मक प्रतिक्रिया को ही प्रधानता मिलती है। विचार को महत्व देने के बावजूद उसे द्वितीयक ही माना गया। वैज्ञानिक प्रगति, तर्क, बुद्धिवाद जैसे आधुनिक औजारों के प्रति इस धारा में सहानुभूति तो दूर उपेक्षा का ही भाव मिलता है। उदाहरण स्वरूप अगर हम हिंदी स्वच्छंदतावादी काव्यान्दोलन 'छायावाद' के कामायनी महाकाव्य को लें जिसमें नायिका 'श्रद्धा' हृदय (भाव) का प्रतीक है तथा इड़ा (तर्क, बुद्धि) आधुनिक वैज्ञानिक अनुशासनों का प्रतीक है। महाकाव्य में श्रद्धा के साथ तो सहानुभूति है लेकिन इड़ा उपेक्षा की ही शिकार हुई है।

18.3.2 बिंबवाद

बिंब अंग्रेजी के इमेज शब्द का हिंदी पर्याय है। आधुनिक समीक्षा में बिंब शब्द का प्रयोग आम हो गया है। परिभाषा के धरातल पर बिंब शब्द को समझना आसान नहीं है। आधुनिक हिंदी आलोचना

के बीज शब्द में डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है - 'इस की परिभाषाएँ भी अनेक हैं - 'यह ऐंद्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक अथवा बौद्धिक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है', 'किसी अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्निर्मित है', बिम्ब पदार्थों के आन्तरिक सादृश्य की अभिव्यक्ति है।' जाहिर है इनमें से एक परिभाषा भी बिम्ब को उसकी संपूर्णता में परिभाषित नहीं कर पाती।' सन् 1908 में हूल्ले और क्लिट ने बिम्बवाद का घोषणापत्र प्रकाशित किया। सन् 1912 से 1917 तक इंग्लैण्ड और अमरीका में बिम्बवाद का आन्दोलन ही चल पड़ा। इस आन्दोलन में मुख्य रूप से टी. ई. ह्यूम, एजरा पाउण्ड, आर्लाइंगटन, एमी लॉवेल, ड्रिलिट्ल, डी. एच. लारेन्स, कैरोल विलियम्स, रिचार्ड एलिंगटन इत्यादि थे।

बिम्बवाद ने सीधी अभिव्यक्ति के स्थान पर बिम्ब को काव्य के लिए अनिवार्य बताया। लम्बी कविता को अनावश्यक बताते हुए बिम्बवादियों ने पूर्ण बिम्ब को आवश्यक बताया। इसी प्रकार ह्यूम ने स्वच्छंदतावाद की भावुकतापूर्ण प्रतिक्रिया की आलोचना की। बिम्बवाद के मुख्य प्रवक्ता एजरा पाउण्ड के कविता की पृष्ठभूमि थी - बरसात की रात में भीगते रेलवे स्टेशन पर कुछ सुन्दर आकृतियाँ। इसे कविता में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है- 'भीड़ में इन चेहरों का दिव्य-दर्शन / मानों किसी भीगी काली टहनी पर पंखुड़ियाँ।' बिम्बधर्मी कविता की विशेषता बताते हुए एजरा पाउण्ड ने कहा: 'मूर्तता, प्रेक्षण की यथातथ्यता, तुलना की तात्कालिकता, और बिम्ब का सौन्दर्य'। बिम्बवाद में विषय से ज्यादा अभिव्यक्ति पर बल दिया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- 'कविता का काम हमारे सामने विचार (कांसेप्ट) लाना नहीं है, बल्कि बिम्ब खड़ा करना है'। एमी लावेल इसे 'सही शब्द' कहता है, जबकि ह्यूम कम शब्दों में पाठक को अधिक प्रभावित करने की क्षमता को बिम्ब का प्रधान गुण मानता है।

18.3.3 प्रतीकवाद

प्रतीकवाद का परिचय देते हुए डॉ० बच्चन सिंह ने लिखा है- 'आंदोलन के रूप में प्रतीकवाद का आरम्भ 1886 में फ्रांस में हुआ। वस्तुतः यह रोमेन्टिसिज्म की एक विकसित शाखा है। इसमें प्रतीक का सायास और सचेत प्रयोग होता है।' फ्रांस में शुरू हुआ प्रतीकवादी काव्यान्दोलन क्रमशः जर्मनी, अमरीका और इंग्लैण्ड में फैला और प्रभाव एशिया तक पहुँचा। इस आन्दोलन के प्रतिनिधि कवि थे - वॉदलेयर, वर्ले, रैम्बो, मलार्मे ओर बैलरी। वॉदलेयर प्रथम साहित्यकार था, जिसने प्रतीकों के प्रयोग को आवश्यक बताया, वर्ले ने प्रतीकों के प्रयोग की प्रक्रिया तथा मलार्मे ने उनकी व्याख्या तथा संगति स्पष्ट की। प्रतीकवाद आन्दोलन का प्रारम्भ कला - दर्शन - विज्ञान क्षेत्र में आई यांत्रिक दृष्टि की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। प्रतीकवाद में भाषा की बंधी - बंधायी पद्धति को तोड़ने का प्रयास किया गया। प्रतीकवाद भाषा के प्रति विशिष्ट दृष्टिकरण को लेकर चलने वाला काव्यान्दोलन है। जिसमें वाच्यार्थ के माध्यम से लक्ष्यार्थ की खोज की जाती है।

18.3.4 यर्थाथवाद

आन्दोलन के रूप में यर्थाथवादी आन्दोलन उस रूप में नहीं चला है, जिस रूप में बिंबवाद या प्रतीकवाद का आन्दोलन एक विचारधारा के रूप में जरूर इस पर लम्बी चर्चा मिलती है। हिंदी में यर्थाथवाद शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द रियलिज्म के पर्याय रूप में होता है। यर्थाथवाद आन्दोलन से ज्यादा प्रवृत्ति है। इसीलिए यर्थाथवादी होना साहित्य की एक प्रवृत्ति मानी गई है। एक विशेष प्रकार के उपन्यासों को जिस प्रकार यर्थाथवादी उपन्यास कहा गया, एक विशेष प्रकार के कविताओं को उसी प्रकार यर्थाथवादी किस्म की कविताएँ कहा गया। इसी प्रकार का प्रयोग साहित्य की अन्य विधाओं पर भी किया गया। यर्थाथवाद का शाब्दिक अर्थ है जो जिस रूप में है उसे उसी रूप में ग्रहण करना। साहित्य के संदर्भ में हालांकि यह मुश्किल है कि हम समाज राजनीति या जीवन को उसी रूप में ग्रहण कर पायें। सिद्धान्त रूप में यर्थाथवादी आग्रह का पालन करते हुए भी व्यवहार में रचना का अपना विज्ञान होता है, जिसके कारण साहित्यिक रचनाएं उस प्रकार से यर्थाथवाद का प्रतिनिधित्व नहीं करती जिस प्रकार विज्ञान या सामाजिक विज्ञान के अन्य अनुशासन। यर्थाथवाद पर विचार करते हुए डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है - 'पश्चिम में इस शब्द का लंबा इतिहास है तत्त्वदर्शन (मेटाफिजिक्स) ज्ञान मीमांसा (एपिस्टेमोलॉजी) और प्रत्ययवाद (कांस्पेचुअलिज्म) में यह अलग-अलग अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तत्त्व दर्शन के अनुसार यर्थाथवाद का अर्थ है कि सामान्य (यूनीवर्सल) की सत्ता विशेष के पूर्व होती है भागवत चेतना है और सृष्टि उस चेतना की प्रतिकृति है। प्लेटो का अनुकृति सिद्धान्त इसी दर्शन पर आधारित है। इसी को वह यर्थाथवाद कहता है। ज्ञान-मीमांसा में ज्ञेय की सत्ता ज्ञाता से भिन्न और स्वतंत्र होती है यदि पदार्थ का ज्ञान ज्ञाता के चित्त पर आश्रित रहता है तो उसे ज्ञान संबंधी विद्वाद (एपिस्टेमोलॉजिकल आइडियलिज्म) कहा जाता है। साहित्यिक यर्थाथवाद का सम्बन्ध ज्ञान-मीमांसा के यर्थाथवाद यानी ज्ञाता से भिन्न ज्ञेय की स्वतंत्र सत्ता से है। डॉ. बच्चन सिंह ने यर्थाथवाद को दृष्टिकोण तथा पद्धति दोनों माना है। जीवन समाज की जटिलता एवं विविधता को व्यक्त करने के लिए यर्थाथवाद के कई वर्गीकरण किये हैं। प्रकृतिवाद मनोवैज्ञानिक, यर्थाथवाद, आलोचनात्मक यर्थाथवाद, सामाजिक यर्थाथवाद, अतियर्थाथवाद, इत्यादि शब्द सभी यर्थाथवाद की ही भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हैं। जैसा कि कहा गया कि पूर्व की रचनाओं में भी चित्रण को अधिक पूर्ण, वातावरण को अधिक जीवंत, रचनाशीलता को सार्थक बनाने का प्रयास किया जाता रहा है किन्तु यर्थाथवाद दार्शनिक वैज्ञानिक आधार को लेकर चलने वाला एक आन्दोलन था। इसकी पृष्ठभूमि में कई चीजें काम कर रही थीं जैसे औद्योगिकीकरण, डार्विन की वैज्ञानिक स्थापनाओं, बेकन, देकार्त, फायरबाख तथा मार्क्स - एंगेल्स जैसे विचारकों के मत। यर्थाथवाद के सम्बन्ध में शिप्ले ने तीन भूमियों की आवश्यकता पर बल दिया है -

क) चित्रण को अधिक समर्थ पूण तथा प्रभाशाली बनाने के हेतु वस्तुस्थिति के एक-एक ब्यौर को एकदम सही रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास।

ख) एक प्रेरक सिद्धान्त तथा सम्पूर्ण साहित्यिक निर्माण को अनुशासित करने वाले एकमात्र सौन्दर्यशास्त्रीय प्रतिमान अथवा लक्ष्य के रूप में उसकी स्वीकृति ।

ग) वह आन्दोलन जो दूसरी स्थिति ख से प्रेरणा ग्रहण करता हुआ 19 वीं शताब्दी के उत्तरकाल में विकसित हुआ ।

यथार्थवादी काव्यान्दोलनों पर टिप्पणी करते हुए एंगेल्स ने लिखा है - 'मेरे विचार से यथार्थवाद का आशय यह है कि लेखक विवरणों और व्यौरों के सतत प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करें । 'यानी कौन सी परिस्थिति प्रतिनिधि (टिपिकल) है और कौन से पात्र प्रतिनिधि है इनकी जांच का कार्य केवल सत्यान्वेषी वस्तुमुखी दृष्टि ही कर सकती है। मिथ्या वस्तुपरकता एवं मिथ्या व्यक्ति परकता से इतर लुकाच यथार्थवाद को समस्त प्रकार के झूठे असमंजसों के विरुद्ध सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचने वाला एक तीसरा रास्ता है ।

18.3.5 अतियथार्थवाद

'अतियथार्थवाद' का तात्पर्य है सामाजिक यथार्थ से आगे यथार्थ की एक और दुनिया। यानि सामाजिक यथार्थ से आगे का यथार्थ जाहिर है यह यथार्थ मन या अवचेतन मन का ही हो सकता है। फ्रायडीय मनोविश्लेषणशास्त्र के स्वप्न-विज्ञान या अवचेतन मन का इस आन्दोलन पर बहुत प्रभाव पड़ा । यह काव्यान्दोलन सन् 1920 ई० के बाद विकसित हुआ। अतियथार्थवाद पर टिप्पणी करते हुए डॉ बच्चन सिंह ने लिखा है:- 'सचेत सृजन की जगह संयोग या चॉस सृजन का इसमें अधिक महत्व था दो विरोधी वस्तुओं को आसपास रखना इसकी एक टेकनीक है। भाषा में नया अर्थ भरकर अंतर्दृष्टि को मुक्त करना भी इसका कार्य था। पर मुक्ति की जो अवधारणा इस कला-आन्दोलन ने विकसित की उसमें मस्तिष्क की कोई भूमिका शेष नहीं रही।

18.3.6 दादावाद

दादावादी आन्दोलन परम्परागत कला संबंधी आंदोलन पर विद्रोह भरी टिप्पणी है। डॉ बच्चन सिंह ने दादावाद पर टिप्पणी करते हुए लिखा है: "चित्रकला के आंदोलन में दादा का योग इतना ही माना जा सकता है कि इसने सारी परम्पराओं के खिलाफ विद्रोह किया। 1915 - 23 की अल्पावधि में इसने कला की सौंदर्यवादी चूलों को हिला दिया। इससे एक प्रकार की कुख्यात क्रान्ति की शुरुआत हुई जिसने अति-यथार्थवाद और पॉप आर्ट में विकसित होती हुई दुनिया की कला-दृष्टि को अस्त व्यस्त कर दिया।" जाहिर है दादावादी कला आन्दोलन का सम्बन्ध घोर विद्रोह की मानसिकता से जुड़ा हुआ है। आगे बच्चन सिंह ने इस आन्दोलन को समझाते हुए लिखा है:- डूकैप ने मोनालिसा की मूँछ बनाकर कला संबंधी बँधी दृष्टि पर आधात किया। ब्रेताँ ने दादा को कला का हत्यारा कहा है। इसकी मुख्य शैली कोलाज है या मनमानापन है । वस्तुतः यह कला सौन्दर्य का आन्दोलनगत न

होकर विद्रोह कानिहलिस्ट विद्रोह का - आन्दोलन है। इसे अराजकतावादी कहने में कोई संकोच नहीं है। डूकेंप, मैक्स अन्सर्ट, फैसिल पेकाविया, कुर्त स्वीत्तर आदि मुख्य दादावादी है।

18.3.7 शैलीविज्ञान

साहित्य के भाषागत प्रयोगों का अध्ययन शैली विज्ञान है। शैली विज्ञान में साहित्य के अध्ययन की वैज्ञानिक पद्धति को अभिव्यक्ति पद्धति के आधार पर मूल्यांकित किया जाता है। शैली विज्ञान कृति को देखने - परखने का एक शास्त्र है। इसलिए आलोचना सिद्धान्त की तरह शैली विज्ञान के भी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक भेद हो जाते हैं। वस्तुतः शैली विज्ञान का है शब्द एवं अंग्रेजी के स्टाइल का अनुवाद है। वह साहित्य सिद्धान्त जो रचना में प्रयुक्त शैली का वैज्ञानिक विवेचन करता है, उसे शैली विज्ञान कहते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र का 'रीति' शैली से मिलता- जुलता शब्द है। आचार्य वामान ने 'रीति' को स्पष्ट करते हुए उसे 'विशिष्ट पद रचना' कहा है। 'विशिष्ट' शब्द का अर्थ यहाँ रचना का गुणयुक्त होना है। प्रत्येक रचनाकार अपने कथन को इस प्रकार अभिव्यक्त करना चाहता है कि उसका प्रभाव पाठक/श्रोता पर ज्यादा से ज्यादा पड़े। इस दृष्टि से शैली विज्ञान काव्य में निहित नये मानव मूल्य के लिए, भाषा के माध्यम से उसके संभावनापूर्ण अर्थ तक पहुँचने का माध्यम है। शैली विज्ञान में एक तरफ कृति के अंतर्गठन की सूक्ष्म व्याख्या की जाती है तो दूसरी ओर भाषा की इकाइयों, जो रचना तक पहुंचने में सहायक होते हैं, उनकी छानबीन की जाती है। पहले कहा गया कि कहने का विशिष्ट ढंग शैली के मूल में है, अतः शैली विज्ञान में रचना के शब्द-चयन पर बल दिया गया है। हॉकेट सम्प्रेषित करने की भाषिक संघटना को शैली कहता है। जबकि ग्लिसन 'भाषिक परम्परा के विकल्पों' के बीच चयन पद्धति को शैली कहता है। इनसे अलग ओल्गा अखमानोवा के अनुसार शैली भाषा का वह अंग है जो महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील संदेशों को सम्प्रेषित करने के उपयोग में लायी जाती है। शैलीविज्ञान किसर स्वतंत्र वाक्य को नहीं सम्पूर्ण कृति को एक स्वतंत्र इकाई मानकर वाक्यों की परस्पर सम्बद्धता के वातायन से अवलोकित करता है। डॉ. रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है - 'कृति का विशिष्ट अर्थ वस्तुतः संदेश की आन्तरिक संघटना का परिणाम होता है।' अर्थ यह कि हम काव्य शैली से कवि की अवस्था, मनःस्थिति, परिवेश समाज इत्यादि का ज्ञान करते हैं।

रचना में अर्थ की कई तहें होती हैं, जो परस्पर अनुस्यूत होती हैं। ऐसी स्थिति में शैलीविज्ञान हमारी मदद करता है। जोसेफ वाचेक ने लिखा है - 'प्रणाली की जटिलता इस तथ्य पर भी प्रकाश डालती है कि कृति में भाषिक संरचना के प्रमुख स्तर के भीतर कई उप-स्तर भी होते हैं, जो स्वयं में स्वतंत्र होते हैं तथा जिनकी विशेष संरचनात्मक समस्याएँ भी होती हैं।' इस संदर्भ में यह बात ध्यान रखनी है कि कृति विश्लेषण स्वयं में तभी पूर्ण होगा जब लेखक की शैली विशेष संदर्भ में विश्लेषित की गई हो। आलोचकों ने किसी कृति के शैलीवैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए निम्नांकित छः प्रमुख तत्त्वों के अध्ययन पर जोर दिया है -

1. वक्ता 2. संदेश 3. श्रोता 4. संदर्भ 5. संपर्क 6. सहिता।

बोध प्रश्न 1

क) नीचे कुछ कथन दिये गए हैं, जिनमें कुछ सही हैं और कुछ गलत कथन के सामने उचित चिह्न (□×) लगाइए।

1. स्वच्छंदतावाद 'शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग श्लेगर ने किया। ()
2. 'लिरिकल वैलेड्स' स्वच्छंदतावाद का घोषणा पत्र है। ()
3. कीट्स स्वच्छंदतावादी कवि है। ()
4. 'लिरिकल वैलेड्स' के लेखक शैली है। ()
5. 'स्वच्छंदतावाद' में कल्पना तत्व पर बल दिया गया है। ()

(ख) रिक्त स्थानों पूर्ति कीजिए।

1. 'स्वच्छंदतावाद' का प्रारम्भ में हुआ।
2. हिंदी का स्वच्छंदतावाद से प्रभावित काव्यान्दोलन है।
3. बिंबवाद का घोषणा पत्र हूल्मे एवं ने प्रकाशित किया।
4. एजरा पाउंड कवि है।
5. 'प्रतीकवाद' का प्रारम्भ देश में हुआ।
6. वॉदलेयर आन्दोलन का कवि है।

18.4 काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

स्वच्छंदतावाद, बिंबवाद, प्रतिकवाद, यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, दादावाद, शैलीविज्ञान में ज्यादातर 20 वीं शताब्दी के प्रमुख अकादमिक साहित्यान्दोलन थे, जिसने साहित्यके बुनियादी आधारों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई आलोच्य काव्यान्दोलनों में कुछ स्वच्छंदतावाद काव्यान्दोलन थे तो कुछ यथार्थवादी एवं अतियथार्थवादी। वैसे तो कोई भी विचार अपने आप में पूर्ण नहीं होता, फिर काव्यान्दोलन तो किसी खास परिस्थिति और विचारधारा से प्रभावित होते हैं, ऐसी स्थिति में उनसे यह आशा करना कि वे केवल काव्यगत अवदान ही करेंगे

व्यर्थ है। पूर्व में हमने प्रमुख काव्यान्दोलनों का परिचय प्राप्त किया। यहाँ हम उनके काव्यगत अवदान एवं सीमाओं पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

18.4.1 स्वच्छंदतावाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

स्वच्छंदतावाद काव्यन्दोलन 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस में चला। कालान्तर में यह आन्दोलन न रहकर एक प्रवृत्ति बन गया। 'स्वच्छंदतावाद' का अर्थ रूढ़ियों से मुक्ति किया जाने लगा। आज तो जड़ परम्पराओं से विद्रोह/नकार के अर्थ में 'स्वच्छंदतावाद' शब्द का व्यवहार होता है। पूंजीवाद के बुद्धिवाद - तर्कवाद के बढ़ते आग्रह सक समाज एवं साहित्य में आस्था - विश्वास एवं भाव उपेक्षित से हो रहें थे। ऐसी स्थिति में स्वच्छंदतावाद ने शुष्क पड़ते भाव को केंद्रीय स्थिति में ला दिया। स्वच्छंदतावादी आन्दोलन ने परम्परा के नाम पर आभिजात्यवादी रूढ़ियों से मुक्ति का प्रयास किया, जिसके कारण यह आन्दोलन परम्परावादियों को ग्राह्य नहीं हुआ। यह आन्दोलन परिस्थिति से ज्यादा मनःस्थिति तथा समाज से ज्यादा व्यक्ति पर बल देता है। इस आन्दोलन में प्रबन्ध काव्य लिखने की अपेक्षा गीतिकाव्य पर ज्यादा बल दिया गया। इसकी उपलब्धियों की बात करें तो यह कि इसने विषयवस्तु एवं भाषा को तर्क एवं अतिवृत्तात्मकता की स्थूलता से मुक्त कर वैयक्तिक अनुभूतियों को विकसित का अवसर प्रदान किया। जैसे हिंदी के 'छायावादी' आन्दोलन की बात करें तो इसने भी शास्त्रसम्मत मान्यताओं के विरुद्ध वैयक्तिक धरातल पर विद्रोह किया। इस प्रकार देखा जाये तो स्वच्छंदतावाद में वस्तु की जगह आत्मा, समाज की जगह व्यक्ति, अनुशासन की जगह स्वमंत्रता, बंद घेरे की जगह मुक्ति एवं की जगह हृदय को प्रतिष्ठित किया। भावना की अतिशयता एवं बुद्धिवाद के विरोध ने इस आन्दोलन को एकांगी बना दिया। व्यक्तिवाद पर अत्यधिक आग्रह होने के कारण यह आन्दोलन समाज की मुख्यधारा से कट गया। सांस्कृतिक स्तर पर इसकी बड़ी देन यह रही कि इसने जड़ मान्यताओं पर प्रहार किया।

18.4.2 बिंबवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

बिंबवाद का आन्दोलन 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक में चला था। यह आन्दोलन मूलतः रोमानी कविता के विरोध में चला था। इस आन्दोलन ने सीधी अभिव्यंजना का विरोध किया और कविता में ठोस विलक्षण बिंब को ही पर्याप्त माना। स्वच्छंदतावाद में जहाँ अमूर्तता पर ज्यादा बल था वहीं बिंबवाद में मूर्तता पर। बिंबवाद ने विषय से ज्यादा अभिव्यक्ति पर बल दिया गया। शैली के सौन्दर्य को उन्होंने नवीनता का सौन्दर्य कहा। बिंबवादियों के अनुसार अभिव्यक्ति की युक्ति, शैली या माध्यम, जिससे रचना में सौंदर्य की सृष्टि होती है, वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। बिंबवाद का बल कविता में नियत शब्द के प्रयोग पर था। इसीलिए बिंबवाद में शब्दों की कमखर्ची, भाषा के समास गुण एवं कम से कम शब्दों के प्रयोग आने वाली से अधिकाधिक अर्थव्यंजना को महत्व दिया गया। स्पष्ट है कि बिंबवाद ने स्वच्छंदतावादी अमूर्तता के बजाय मूर्तता एवं शब्दों की फिजूलखर्ची के बजाय कमखर्ची पर बल दिया। हाँ स्वच्छंदतावाद की तरह बिंबवाद में भी विषय की अपेक्षा अभिव्यक्ति

को महत्त्व मिला (स्वच्छंदतावाद में विषय से ज्यादा कल्पना महत्वपूर्ण हैं)। बावजूद इसके बिंबवाद का आन्दोलन लम्बा नहीं चला। हालांकि आन्दोलन के रूप में कोई भी साहित्यिक आन्दोलन बहुत लम्बा नहीं चलता। फिर भी बिंबवादी आन्दोलन ने पूरे विश्व के साहित्यिकारों को प्रभावित किया। पश्चिम के टी.एस. इलियट, मरियम मूर, वैलेस स्टीवेंस, विलियम कार्लोस विलियम्स इससे प्रभावित हुए वहीं छायावादी कविता एवं नयी कविता पर इस आन्दोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा। जहाँ तक बिंबवाद की सैद्धान्तिकी का प्रश्न है अभिव्यक्ति, शैली, नवीनता के सौन्दर्य का तो महत्त्व है और इससे किसी को इंकार भी नहीं है लेकिन विषयवस्तु से ज्यादा बिंब पर बल देने का दुष्परिणाम यह हुआ कि कविता नक्काशी बन गई। दूसरी समस्या यह पैदा हुई कि विलक्षण, दुर्लभ बिंबों की खोज कठिन कार्य है। इसे लम्बे समय तक कायम नहीं रखा जा सकता। तीसरी समस्या यह थी कि बिंबवादी लम्बी कविता का निषेध इसलिए करते थे क्योंकि वे कविता में एक ही पूर्ण बिंब को अभिव्यक्त करना चाहते थे। इस प्रकार कविता में मूर्तता से चित्र खड़ा कर देने की शैली, कविता में संवेदन को ज्यादा महत्त्व देने का प्रयास जरूर बिंबवाद की उपलब्धि कही जा सकती है।

18.4.3 प्रतीकवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

आधुनिक काव्यान्दोलनों की जन्मभूमि फ्रांस में 'प्रतीकवाद' का आन्दोलन 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (लगभग 1886 ई.) में चला। प्रतीकवाद के मूल में यह सिद्धान्त है कि शब्दों के द्वारा अगम्य की व्यंजना के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें अपने सामान्य अर्थों से मुक्त कर दिया जाए और अपने परिचित प्रसंगों से तब तक अलग रखा जाए जब तक उनका शोधन न हो। 'प्रतीकवादी आन्दोलन मनोदृष्टि के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप में आया। कला, दर्शन के क्षेत्रों में यथार्थवादी प्रवृत्ति के तथा वैज्ञानिक भौतिकवाद के विरोध में प्रतीकवाद ने साहित्य क्षेत्र में विशेष प्रकार की काव्यभाषा का आग्रह किया है, जिसमें वाच्यार्थ - लक्ष्यार्थ से भिन्न ध्वन्यार्थ पर बल दिया जाता है। प्रतीकवादियों के अनुसार, वस्तु का मूल्य उसके चित्रण में नहीं होता, वस्तु अपने आप में महत्वपूर्ण नहीं होती। उसका मूल्य उसकी गूढ सांकेतिकता में निहित रहता है। वस्तुतः सामान्य शब्दों की असमर्थता के कारण ध्वनियों एवं संकेतों से वर्णन करना प्रतीकवादियों के लिए अनिवार्य हो जाता है। एक ओर जहाँ प्रतीकवाद ने काव्य भाषा को निश्चित अर्थ से मुक्त किया, उसे विशिष्ट अर्थ प्रदान किया वहीं यह समस्या भी खड़ी हो गई कि एक-से-अधिक अनिश्चित अर्थ की ओर इंगित करने के कारण कवि के नियत, अभिप्राय को नियत करने में बाधा होने लगी। मलर्मि ने लिखा है मैं विस्मित होने वाले पाठको के लिए लिखता हूँ प्रतीकवादियों के अनुसार सुस्पष्टता सुन्दर नहीं है, अस्पष्टता ही सौन्दर्य है। ऐसी स्थिति में प्रतीकवादियों के लिए किसी कला-सिद्धान्त का पालन करना असम्भव है।

18.4.4 यर्थाथवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

'यर्थाथवाद' आधुनिक साहित्य सिद्धान्त की सर्वाधिक प्रभावी वैचारिकी हैं। आज तो यर्थाथवादी होना साहित्य की मुख्य विशेषता माना गया है। बावजूद एक आन्दोलन के रूप में 'यर्थाथवाद' नामक आन्दोलन उस रूप में नहीं चला, जिस तरह बिंबवाद प्रतीकवाद या स्वच्छंदतावाद का आन्दोलन। यर्थाथवाद वैज्ञानिक आविष्कारों एवं आधुनिकतावादी विचारों के पश्चात् एक दृष्टि थी, जो साहित्य समाज को वस्तुपरक ढंग से देखने का आग्रह करती है। जो जिस रूप में है उसे उसी रूप में चित्रण करना यर्थाथवाद की केंद्रीय विशेषता है। इस दृष्टिकोण का यह लाभ हुआ कि साहित्य समाज के और करीब आया और वह जन - सामान्य की समस्याओं से जुड़ा। इस संदर्भ में परेशानी यह है कि साहित्य के गठन में कई तत्व ऐसे हैं जो यांत्रिक तरीके से हल नहीं किये जा सकते। यर्थाथवादी सिद्धान्त को मार्क्सवादी विचाराधारा से ज्यादा बल मिला। साहित्य के प्रारम्भिक समय से ही रचनाकार अपनी रचना को विश्वसनीय बनाने के लिए यर्थाथवादी तत्वों का प्रयोग करता रहा है, लेकिन एक व्यापक जीवन दर्शन के रूप में यह आधुनिक काल में सिद्धान्त का आधार ग्रहण करता है। लुकाच जहाँ इसे समय तक पहुँचने का मार्ग कहता है वहीं एंगेल्स प्रतिनिधि परिस्थिति तथा चरित्रों पर बल देना यर्थाथवाद की विशेषता मानता है। हिंदी में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हो या कविता में 'प्रगतिवाद' यर्थाथवादी जीवन दृष्टि जहाँ यथार्थवाद काव्य या साहित्य के लिए अनिवार्य है या अतिमहत्वपूर्ण है, वहीं 'यर्थाथवाद' की स्पष्ट सीमाएँ भी हैं। यर्थाथवादी आन्दोलन में सामाजिकता का अत्यधिक आग्रह है, जो 'व्यक्ति की सृजनात्मकता' को काफी हद तक उपेक्षित कर देता है। यर्थाथवादी चिंतन ने कल्पना पक्ष, भावना पक्ष और शिल्प, भाषा पक्ष के साथ न्याय नहीं किया है।

18.4.5 अतियर्थाथवाद: काव्यगत अवदान एवं सीमाएँ

अतियर्थाथवादी आंदोलन का संबंध सामाजिक यर्थाथ की बजाय अवचेतन मन के यर्थाथ से है। कह सकते हैं कि इस आंदोलन पर फ्रायड का प्रभाव है। अतियर्थाथवादियों ने इसे यर्थाथवाद की अगली मंजिल माना है। 'यर्थाथवाद' में सामाजिक सत्य के चित्रण में व्यक्ति सत्य की बहुत उपेक्षा हुई, इस दृष्टि से अतियर्थाथवादी आन्दोलन ने एक बड़े अभाव की पूर्ति की। व्यक्ति सत्य को सामने लाने में अवचेतन मन की तलाश 'स्वप्न' से ही संभव है। इस आन्दोलन में मन की दमित वासनाओं को उजागर करने वाले साधनों पर बल दिया गया। ऐसी स्थिति में स्वप्न, पागलपन, संमोहन आदि से इस आंदोलन ने प्रभाव ग्रहण किया। अन्तर्मन की विकृति (उन्मादग्रस्तता) को व्यक्त करने के लिए दो विरोधी वस्तुओं को आस-पास रखना इसकी एक टेकनीक है। साहित्य में व्यक्ति मन की गूढ़ वासनाओं को व्यक्त करने की दृष्टि से जहाँ इस आन्दोलन ने अपना योगदान दिया, वहीं इसकी सीमा भी बन गया।

18.4.6 दादावाद: अवदान एवं सीमाएँ

दादावादी आन्दोलन मुख्यतः चित्राकला का आन्दोलन है। जिसने कला क्षेत्र को बड़े पैमाने पर प्रभावित किया। इस आन्दोलन ने कला क्षेत्र के सौन्दर्यवादी प्रतिमानों पर चोट की। इसकी मुख्य शैली कोलाज है। वस्तुतः इसे विद्रोह का आन्दोलन कहा जाता है। चूँकि इस आन्दोलन ने स्वतंत्रता, सृजन को प्रचलित रूप में अस्वीकार करते हुए मनमानेपन को ही सृजन माना। इस आन्दोलन का कोशगत अर्थ कुछ नहीं है। जारा इसे अनिश्चित अर्थ का आन्दोलन कहता है। जो वस्तुएँ, विचार मनुष्य को अवरोध पैदा करती हैं, उसे इस आन्दोलन ने मुक्त किया। दादावादी आन्दोलन को इस अर्थ में महत्वपूर्ण कहा जा सकता है कि इसने आधुनिक सौन्दर्यवादी मूल्यों को अस्वीकार करने उसे जड़ बनाने से रोका।

18.4.7 शैलीविज्ञान अवदान एवं सीमाएँ

शैलीविज्ञान आधुनिक आलोचना शास्त्र का प्रमुख दर्शन है। डॉ बच्चन सिंह ने लिखा है - "सामान्यतः शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की वह शाखा है जिसके माध्यम से साहित्य की रचनात्मक कृतियों का वस्तुनिष्ठ अध्ययन होता है।..... शैली' का सामान्य अर्थ है साहित्यिक अभिव्यंजना की प्रविधि। शैली विज्ञान साहित्य के अन्दर प्रवेश करने का मार्ग है। यह हमें कुछ आलोचना सूत्र देता है, जो हमारे साहित्यिक मूल्य निर्मित करने में हमारी मदद करते हैं। लेकिन इसकी तकनीकी जटिलता ऐसी है कि कई बार रास्ता निकलने के बजाय पाठक मार्ग ही भूल जाता है। डॉ बच्चन सिंह ने शैलीविज्ञान की कुछ कमियों की ओर इशारा किया है - " अपनी सीमित प्रविधियों, कमजोर औजारों के कारण इनमें कई त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं यह अपने मूलरूप में बीजगणित हैं; साहित्य का सौन्दर्यशास्त्रीय पक्ष इससे अस्पृश्य है, मूल्यांकन से इसका कोई संबंध नहीं है, कथा-साहित्य के लिए इसके सिद्धान्त छोटे पड़े जाते हैं व्याकरणिक भूमिका पर खड़ा शैलीविज्ञान काव्य के रूप और सौन्दर्य - पक्ष को अछूत मानता है..... मूल्यांकन आलोचना का अनिवार्य अंग है। लेकिन इस विज्ञान में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। कथालोचन के लिए यह सर्वाधिक अनुपयुक्त है। कथा वस्तु चरित्र, आदि की विवेचना के लिए इसके पास कोई औजार नहीं है। रचनागत अंतर-दृष्टि से भी कुछ लेना देना नहीं है।

बोध प्रश्न 2

(क) निम्नलिखित शब्दों पर 10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1. स्वच्छंदतावाद

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. शैलीविज्ञान की सीमाएँ

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. बिंबवाद

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख. नीचे कुछ कथन दिये गए हैं, जिनमें कुछ सही हैं और कुछ गलत कथन के सामने उचित चिह्न (□×) लगाइए।

1. शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान से संबंधित है ()
2. 'दादावाद' चित्रकला से संबंधित रहा है ()
3. 'यर्थाथवादी' आन्दोलन पर मार्क्सवाद का प्रभाव रहा है ()

4. 'अतिथर्थाथवाद' का सम्बन्ध अवचेतन मन से रहा है। ()
5. स्वच्छंदतावाद में रूढ़ियों से मुक्ति का प्रयास है। ()

18.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात पा जान चुके हैं कि स्वच्छंदतावाद, बिम्बवाद, प्रतीकवाद, यर्थाथवाद, अतिथर्थाथवाद, दादावाद एवं शैलीविज्ञान जैसे आन्दोलन आधुनिक कला जगत के महत्वपूर्ण आन्दोलन रहे हैं। स्वच्छंदतावादी आन्दोलन पूँजीवादी विकासकाल की देन है। यह आन्दोलन आभिजातवादी मूल्यों के प्रति विद्रोह करता है।

आप ने जाना कि स्वच्छंदतावाद ने पूँजीवादी वृद्धि एवं तर्क के स्थान पर कल्पना, भावना, एवं हृदय को प्रतिष्ठित किया। बिम्बवाद का आन्दोलन बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का आन्दोलन था। यह आन्दोलन चित्रकला से प्रभावित था। कविता का काम वर्णन करना नहीं है बल्कि चित्र खड़ा करना है। प्राचीन कविता में जो स्थान अलंकार का था वहीं स्थान आधुनिक कविता में बिम्ब का है। प्रतीकवादी आन्दोलन का प्रारम्भ फ्रांस में हुआ। प्रतीकवादी आन्दोलन ने शब्दों को उनके सामान्य अर्थों से मुक्त कर विशिष्ट अर्थ प्रदान किया।

साथ ही आप ने यह भी जाना कि 'यर्थाथवाद' कोई एक आन्दोलन न होकर देखने की एक दृष्टि है। समाज को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करना यर्थाथवादी चिंतन का आधार मत है। वस्तुतः 'यर्थाथवादी' दृष्टि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से युक्त वस्तुनिष्ठ दृष्टि है। 'यर्थाथवाद' ने सामाजिकता पर बहुत बल दिया। इसमें व्यक्ति - भावना - कल्पना का उतना विस्तार नहीं है जितना स्वच्छंदतावादी आन्दोलन में। अतिथर्थाथवादी आन्दोलन सामाजिक यर्थाथ से आगे अवचेतन मन के सत्य को लेकर चलने वाला आन्दोलन था। इसने व्यक्ति सत्य, स्वप्न, पागलपन, उन्माद इत्यादि को औजार की तरह प्रयोग किया। 'दादावादी' आन्दोलन अराजकतावादी आन्दोलन था। इसने परम्परागत सौन्दर्यवादी मूल्यों पर प्रहार किया। नकार, मनमानापन इत्यादि इस आन्दोलन के मूल में हैं। शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में विकसित हुआ। शैलीविज्ञान साहित्यिक रचना की छानबीन करने का एक माध्यम है, जो कई बार माध्यम में ही उलझ कर रह जाता है।

18.6 शब्दावली

अनुकरण सिद्धान्त - अरस्तु द्वारा प्रवर्तित साहित्य सिद्धान्त

विरेचन सिद्धान्त - अरस्तु द्वारा प्रवर्तित साहित्य सिद्धान्त, जिसमें काव्य के द्वारा भावों को परिष्कृत करने पर बल दिया गया है।

स्वच्छंदतावाद - रूढ़ियों से मुक्ति का आन्दोलन

रीति सिद्धान्त - आचार्य वामन द्वारा प्रवर्तित साहित्य सिद्धान्त, वामन ने विशिष्ट रचना पद्धति को रीति कहा है।

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1 क

(1) - ✓

(2) - ✓

(3) - ✓

(4) - ×

(5) - ✓

ख

(1) - फ्रांस

(2) - छायावाद

(3) - फिलंट

(4) - बिंबवादी

(5) - फ्रांस

(6) - प्रतीकवाद

बोध प्रश्न 2 ख

(1) - ✓

(2) - ✓

(3) - ✓

(4) - ✓

(5) - ✓

18.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाश्चात्य साहित्य चिंतन - निर्मना जैन/कुसुम बॉठिया, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
2. काव्य चिंतन की पश्चिमी परम्परा - निर्मना जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
3. पाश्चात्य काव्यशास्त्र - तारकनाथ बाली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द - बच्चन सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

18.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शैलीविज्ञान - सुरेश कुमार
2. शैलीविज्ञान - नगेन्द्र
3. 'द हिस्ट्री ऑफ सुररियनिलज्म - मारिस नादो
4. सौन्दर्यशास्त्र के तत्व - कुमार विमल

18.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वच्छंदतावाद ' की प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।
2. 'यर्थाथवाद' की मूलभूत विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए अतियर्थाथवाद से उसका वैषम्य स्पष्ट कीजिए।

इकाई 19 हिन्दी आलोचना : आचार्य रामचंद्र शुक्ल और उनका युग

- 19.1 प्रस्तावना
- 19.2 उद्देश्य
- 19.3 रामचंद्र शुक्ल: कृतित्व और व्यक्तित्व
- 19.4 रामचंद्र शुक्ल की आलोचना
- 19.5 शुक्ल-युग के अन्य आलोचक
- 19.6 हिन्दी आलोचना में शुक्ल-युग का योगदान
- 19.7 सारांश
- 19.8 शब्दावली
- 19.9 सहायक पाठ्य सामग्री
- 19.10 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई हिन्दी स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित है - इस इकाई के अध्ययन के पूर्व आपने प्राचीन भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के विभिन्न आयामों का समझा प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी साहित्य के आधुनिकयुगीन सर्वाधिक चर्चित एवं महत्वपूर्ण साहित्यशास्त्री एवं साहित्येतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे। साथ शुक्ल युग के अन्य महत्वपूर्ण आलोचकों की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हिन्दी एवं अन्ततः सम्पूर्ण भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आचार्य शुक्ल एवं उनकी ऐतिहासिक आलोचनात्मक समीक्षा- दृष्टि की विशेषताओं को समझ सकेंगे।

19.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कृतित्व और व्यक्तित्व से परिचित होंगे।
- आचार्य शुक्ल जी आलोचना के सिद्धान्तों से परिचित होंगे।
- शुक्ल-युग की हिंदी आलोचना की प्रमुख प्रवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- शुक्ल-युग के आलोचकों से परिचित होंगे।
- सम्मुख हिंदी आलोचना के क्षेत्र में रामचंद्र शुक्ल के योगदान को जान सकेंगे।

19.3 रामचंद्र शुक्ल: व्यक्तित्व और कृतित्व

रामचंद्र शुक्ल का जन्म 1884 ई. में हुआ। उनका जन्मस्थान उ.प्र. के बस्ती जिले का अगोना गाँव है। 1892 से वे अपने पिता के साथ उ.प्र. के ही मिर्जापुर में रहे, जो वहाँ सदर क्लानूनगो के पद पर नियुक्त थे। नौ साल की उम्र में शुक्ल जी का माता का स्वर्गवास हो गया। विमाता का आगमन हुआ और फलतः उनका बचपन काफ़ी दुःख और अपमान में बीता। शायद जीवन के इस दुःखमय पक्ष के कारण ही शुक्ल जी के व्यक्तित्व में एक अतिरिक्त गम्भीरता शामिल हो गई जो जीवनपर्यन्त रही। वे पढ़ना चाहते थे किंतु जीवनस्थितियाँ प्रतिकूल थीं। उन्होंने अपनी लगन से एंट्रेंस और एफ.ए. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। मिर्जापुर के पं. केदारनाथ पाठक और बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के सम्पर्क में शुक्ल जी की साहित्य-रुचि को और बल मिला। यहीं पर उन्होंने हिंदी, उर्दू, संस्कृत और अंग्रेज़ी के साहित्य का गहन-गम्भीर अध्ययन किया, जो आगे उनके लेखन को एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करने में सहायक हुआ। उनके पिता पं. चंद्रबली शुक्ल की इच्छा थी कि वे

कचहरी में जाकर काम सीखें लेकिन शुक्ल जी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। उनके पिता नहीं जानते थे कि वे जिसे कचहरी का मामूली बाबू बनाना चाहते हैं, वह बच्चा एक दिन साहित्य की कचहरी का मुख्य न्यायाधीश बनेगा। कचहरी के नुक़ते से ही पिता ने उन्हें वकालत पढ़ने इलाहाबाद भेजा पर उनका मन और कर्म वकालत न न होकर साहित्य में अवस्थित होना था, वे वकालत के इम्तिहान में असफल रहे। उनके पिता ने प्रयास किया कि उन्हें नायब तहसीलदारी हासिल हो पर अंग्रेज़ सरकार से भीख में मिला पद शुक्ल जी को स्वीकार्य नहीं था। वे मिर्ज़ापुर के ही मिशन स्कूल में चित्रकला के अध्यापक हो गए। इसी दौरान उनके लेख हिंदी के पत्र और पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे और उनकी साहित्यिक दृष्टि का यश फैलने लगा। 1909-10 में उनकी योग्यता से प्रभावित होकर बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा ने उन्हें हिंदी शब्द सागर के सम्पादन में वैतनिक सहायक का कार्य दिया। वे नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक भी बने। अंत में शुक्ल जी काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्राध्यापन करने लगे। कुछ समय के लिए वे अलवर राज्य की नौकरी में गए लेकिन रुचि का कार्य न होने के कारण पुनः काशी हिंदू विश्वविद्यालय लौट आए। बाबू श्यामसुंदर दास की मृत्यु के बाद 1937 में उन्हें विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। इसी पद पर रहते हुए 1941 में श्वास के दौर के कारण हृदयगति रुक जाने से शुक्ल जी का देहान्त हो गया।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना को उनके परवर्ती आलोचक डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी हिंदी में 'विशुद्ध आलोचना का प्रारम्भ' मानते हैं। हालाँकि रामचंद्र शुक्ल ने 'गोस्वामी तुलसीदास' के अलावा अपने समय में कोई पृथक आलोचना-पुस्तक नहीं छपाई, लेकिन उनका आलोचनाकर्म दरअसल उनकी दूसरी सभी पुस्तकों और निबंधों में मौजूद है। उदाहरण के लिए सूर पर 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका या फिर जायसी पर 'जायसी ग्रंथावली' की भूमिका। वस्तुतः 'गोस्वामी तुलसीदास' भी तुलसी ग्रंथावली की भूमिका ही है। भ्रमरगीतसार की भूमिका भी 'महाकवि सूरदास' नामक पुस्तक के रूप में अलग से उपलब्ध है। आज उपलब्ध रस-मीमांसा जैसी पुस्तकें वास्तव में लंबे आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह ही हैं। शुक्ल जी ने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा, जिसमें उनकी आलोचना बीजरूप में स्पष्ट दिखाई देती है। ध्यान देने की बात है कि यह 'इतिहास' भी अलग से नहीं, बल्कि 'हिंदी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में लिखा गया और बाद में अपने ऐतिहासिक-सैद्धान्तिक महत्व के कारण पुस्तक रूप में छपा। फिर चिंतामणि 1-2 में संकलित उनके अद्भुत निबन्ध, जहाँ उनके आलोचक का विराट युगान्तरकारी व्यक्तित्व प्राप्त होता है। बहुत बाद में चिंतामणि -3 नामवर सिंह के सम्पादन में प्रकाशित हुआ।

आचार्य शुक्ल संयोगवश नहीं, बल्कि पूरी सैद्धान्तिक-वैचारिक तैयारी के साथ हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आए थे। उन्होंने भारतीय वाङ्मय का अकूत ज्ञान तो अर्जित किया ही था लेकिन पश्चिमी साहित्य-सिद्धान्तों से उनका जैसा अंतरंग परिचय था, वैसा उनसे पहले किसी आलोचक का नहीं रहा। शुक्ल जी का समय स्वतंत्रता संग्राम के तीव्रतर होते जाने और फलतः अंग्रेज़ी के घोर विरोध का समय था। शुक्ल जी जानते थे कि इस विरोध का रुख अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद

और शोषकशक्तियों की ओर होना चाहिए, न कि भाषा और उसकी साहित्यिक सम्पदा की ओर। शुक्ल जी हिंदी के पहले आलोचक-विद्वान हैं, जो तब तक उपलब्ध अंग्रेज़ी के सैद्धान्तिक साहित्य से लगातार परिचित होते रहे और उसका अनुवाद भी हिंदी के पाठकों को उपलब्ध कराते रहे। उदाहरण के लिए एडिसन के विख्यात निबन्ध 'एसे आन इमेजिनेशन' का अनुवाद उन्होंने 'कल्पना का आनन्द' शीर्षक से किया। वे जर्मन विद्वान मानवशास्त्री हैकल की पुस्तक 'रिडिल ऑफ दि यूनीवर्स' से बहुत प्रभावित थे, जिससे उन्होंने ज्ञान-विज्ञान की सीमारेखा पर खड़े रहकर जीवन और उसकी महिमा को व्यक्त करनेवाले साहित्य को देखने की अपनी निजी बौद्धिकदृष्टि अर्जित की। इस पुस्तक का अनुवाद भी उन्होंने हिंदी के लेखकों और पाठकों के लिए किया, जो बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा से 'विश्वप्रपंच' नाम से छपा। इस पुस्तक का उन्होंने महज अनुवाद ही नहीं किया, बल्कि 155 पृष्ठों की विशाल भूमिका भी लिखी, जिसमें उस पुस्तक के महत्व के विश्लेषण के साथ-साथ शुक्ल जी की उस पुस्तक के प्रति सहमति और असहमतियाँ भी दर्ज हैं। इसे मात्र संयोग नहीं समझा जाना चाहिए कि भक्तिकालीन काव्य के समर्थक शुक्ल जी की यह प्रिय अनात्मवादी पुस्तक, उस समय के विख्यात साम्यवादी जननायक लेनिन को भी उतनी ही प्रिय थी।

रामचंद्र शुक्ल के कृतित्व की एक खास बात यह भी है कि वे हिंदी साथ-साथ अंग्रेज़ी में भी लिखते रहे। उस समय के अंग्रेज़ी भारतीय पत्रों के लिए उन्होंने राजनीतिक युगबोध से सम्बन्धित लेख लिखे, जो प्रकारान्तर से उनकी आलोचकीय दृष्टि की पहचान कराते हैं। उदाहरण के लिए 'हिंदुस्तान रिव्यू' में 'व्हाट हैज़ इंडिया टु डू' और 'लीडर' में 'हिंदी एंड मुसलमान्स' शीर्षक से छपे उनके लेख। कोई भी प्रबुद्ध आलोचक जानता है कि साहित्य का स्रोत समकालीन सामाजिक-राजनीतिक जनजीवन में अवस्थित होता है, जिसे भली-भाँति जाने और उस पर अपनी राय क्रायम किए बिना साहित्य की आलोचना सम्भव नहीं। शुक्ल जी ने इस जनजीवन को जानने के जटिल किंतु सफल प्रयास किए, न सिर्फ़ समकालीन जीवन को, बल्कि पिछले हजार वर्ष के भारत को जानने के।

आलोचनात्मक ग्रंथः

सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, जायती ग्रंथावली काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनावाद, रस-मीमांसा आदि।

निबन्धात्मक ग्रंथः

उनके निबन्ध चिंतामणि के दो भागों में संग्रहीत हैं। उनके बाक़ी निबन्धों का संग्रह भी चिंतामणि के तीसरे भाग के रूप में शुक्ल जी की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ, जिसका सम्पादन प्रखर मार्क्सवादी आलोचक नामवर सिंह ने किया।

हिंदी साहित्य का इतिहास।

शुक्ल जी ने कई पुस्तकों के अनुवाद किए, जिनमें शशांक और विश्वप्रपंच, बुद्ध चरित आदर्श जीवन, मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन, राज्य प्रबंध शिक्षा कल्पना का आनन्द आदि प्रमुख हैं। संपादित ग्रंथों में हिंदी शब्द सागर, भ्रमरगीत सार, सूर-तुलसी-जायसी ग्रंथावलियाँ उल्लेखनीय हैं।

19.4 रामचंद्र शुक्ल की आलोचना

महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग की आलोचना मुख्यतः साहित्येतिहास और भाषा केंद्रित रही। उसमें अपने और बीते समय के समाज और उसके मन को समझने की कोशिश न के बराबर थी। वह साहित्य एवं भाषा के नियम और सिद्धान्तों के निर्माण को ही अपना दायित्व समझ बैठी थी। आचार्य शुक्ल ने इस धारणा को तोड़ा। यह द्विवेदी-युग पर आक्षेप नहीं है बल्कि आलोचना के महत्वपूर्ण आरम्भिक पक्ष का निरूपण भर है। रामचंद्र शुक्ल, जैसा कि पहले भी कहा गया, पूरी वैचारिक तैयारी के साथ आलोचना के क्षेत्र में आए थे। उनकी यह तैयारी ऐसी थी कि उनका लिखा हिंदी साहित्य का इतिहास भी कुछ पक्षों में किंचित विवादित होने के बावजूद आलोचना-ग्रंथ मान लिया जाता है। वे दर्शन, इतिहास, सिद्धान्त, विज्ञान, समाज और राजनीति के अपने समय के ज्ञान से पूरी तरह अवगत थे और इनमें से हर पक्ष पर अपनी निजी राय भी रखते थे, जो उनके आलोचकीय व्यक्तित्व को विराट बनाता है। उन्होंने जितने भी निबन्ध लिखे, वे आज की परिभाषा में शुद्ध आलोचना हैं। मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों की विषयवस्तु भी दरअसल साहित्य की उलझनों को सुलझाने का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

आचार्य शुक्ल के आलोचना सिद्धान्तों को बिंदुवार दिया जाए, तो वे कुछ इस प्रकार होंगे -

1. साहित्य-रचना में लोकमंगल-तत्व का होना एक अनिवार्य शर्त है। शुक्ल जी का दिया 'लोकमंगल' का यह पद तुलसी की रामचरित मानस से प्रेरित है पर इसका दायरा आधुनिक सन्दर्भों में जनवाद तक पहचाना जा सकता है।
2. शुक्ल जी के अनुसार कविता भावयोग की साधना है। इस साधना से मनुष्य का हृदय स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठकर लोक-सामान्य भावभूमि पर पहुँच जाता है। इस तरह रामचंद्र शुक्ल साहित्य को विशिष्टता के घेरे से निकालकर सामान्य जन के संसार में पहुँचा देते हैं।
3. आचार्य शुक्ल के अनुसार लोक-सामान्य भावभूमि पर पहुँचना काव्य का उद्देश्य है। अर्थात् आम जनों से भरे अपने बाहर के विराट संसार और समाज को न सिर्फ जानना बल्कि अपनी अभिव्यक्ति में उस तक पहुँचना कविता लक्ष्य होना चाहिए और ऐसी कविता लोकमंगलवादी होगी।
4. शुक्ल जी ने अपने आलोचना-सिद्धान्त साहित्यिक रचनाओं के आधार पर स्थापित किए हैं इसलिए उनकी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना में परस्पर संगति स्पष्ट

दिखाई देती है। यह आलोचना की मूल समस्या है कि आलोचक सैद्धान्तिक रूप से कुछ और मानता और कहता है किंतु किसी कृति पर व्यावहारिक समीक्षा करते हुए अपने ही सिद्धान्तों के विरोधी पक्षों पर सहमति व्यक्त करने लगता है। शुक्ल जी की आलोचना इस समस्या से मुक्त है क्योंकि सिद्धान्तों के प्रतिपादन में वे साहित्यिक कृतियों से कई-कई उदाहरण देते चलते हैं। उनका लोकमंगल के महत्व का सिद्धान्त भी मूल रूप से भक्तिकाव्य और प्रिय कवि तुलसी की व्याख्या करने उपक्रम में ही विकसित हुआ है। अर्थात् शुक्ल जी की आलोचना के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष एक-दूसरे से बँधे-जुड़े हुए हैं, जो उन्हें और भी विश्वसनीय बनाते हैं।

5. आचार्य शुक्ल ने हर उस तरह के साहित्य, जो आम जन की अभिव्यक्ति नहीं करता, को सामन्ती साहित्य माना और उसका विरोध किया। इसका प्रमाण रीतिकाव्य सम्बन्धी उनकी स्थापनाओं में स्पष्ट रूप से मिलता है। वे देशभक्ति और जनतंत्र की साहित्यिक परम्परा और विरासत को पहचानने तथा स्थापित करने में विश्वास रखते थे।
6. भक्तिकाल की कविता और उसमें भी तुलसीदास की कविता से प्रेरणा प्राप्त करने वाले शुक्ल जी के विषय में यह भ्रम आम है कि धार्मिकता के समर्थक आलोचक थे लेकिन रस-मीमांसा में उन्होंने स्पष्ट किया है कि अध्यात्म शब्द की मेरी समझ में काव्य या कला के क्षेत्र में कहीं कोई ज़रूरत नहीं है। जीवन-व्यवहार में आस्तिक और धर्मनिष्ठ शुक्ल जी के आलोचकीय सिद्धान्तों में यह सिद्धान्त सबसे क्रांतिकारी है।
7. आचार्य शुक्ल के अनुसार साहित्यकर्म, जिसमें आलोचना शामिल है, को रूढ़िवादी धार्मिकता, पारलौकिकता, रहस्यवादिता से दूर सामान्य समाज और व्यक्तिमात्र के लिए अभिव्यक्ति करनी चाहिए।
8. रूढ़िवादिता और कर्मकांड से अलग शुक्ल जी भक्ति पर बल दिया और उसमें भी सगुण भक्ति पर क्योंकि उनकी दृष्टि में सगुणमार्गी भक्त के लिए भगवान की ओर जानेवाला रास्ता इसी संसार के बीच से होकर जाता है। शुक्ल जी निर्गुण के पक्ष क्यों नहीं नहीं है, इस बात को उन्होंने सूरदास पर लिखते हुए स्पष्ट किया है - भक्त की अनुभूति वही है जिसे काव्य की लीनता या रस-प्रतीति कहते हैं। प्रक्रिया भी वही स्वाभाविक और सीधी-सादी है। कल्पना या भावना, जिससे विज्ञान का भीतरी साक्षात्कार होता है और भाव या रागात्मिका वृत्ति जिससे आनन्दानुभूति होती है, दोनों मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियाँ हैं। बस इन्हीं दो स्वाभाविक वृत्तियों के सहारे भक्ति रस की निष्पत्ति हो जाती है। इसके सीधे-सादे विधान में न इला पिंगला नाड़ियाँ हैं, न सहस्रार चक्र, न ब्रह्मरंध्र, न आसन, न प्राणायाम।
9. शुक्ल जी की स्पष्ट मान्यता है कि साहित्यकार को आधुनिक वैज्ञानिक जीवनदृष्टि से सम्पन्न होना चाहिए। विज्ञान और तकनीक के अंधानुकरण का समर्थन उन्होंने नहीं किया और उसकी सीमाओं को रेखांकित करते हुए वे मानव के विकास में वैज्ञानिक

विवेचन के महत्व को स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि दरअसल वैज्ञानिक जीवनदृष्टि ही साहित्यकार को उस पाखंड और रूढ़िवादिता से दूर करती है, जिसके कारण वह लोक और लोकमंगल की अभिव्यक्ति से विरत हो सामान्य भावभूमि को हेय समझने लगता है।

10. शुक्ल जी ख्याति रससिद्धान्त के उद्भावक आचार्य के रूप में भी रही है। ध्यान देने का विषय है कि आचार्य शुक्ल ने रस की व्याख्या का कार्य साधारणीकरण के माध्यम से सामाजिक सन्दर्भों में किया है और उसे आस्वाद से बढ़ाकर मूल्य से जोड़ दिया है। हिंदी-संस्कृत के दूसरे रसशास्त्री यह काम नहीं कर पाए, जिसे अत्यन्त सहजता से शुक्ल जी ने किया।
11. आचार्य शुक्ल ने सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना की एक सर्वथा नई सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पद्धति विकसित की, जो तब तक हिंदी आलोचना में नहीं थी। बाद में मनोविज्ञान और समाज को जोड़ कर हिंदी में एक नया पद आया 'मनोसमाज', जो छायावाद से लेकर नई कविता और आज तक व्यवहार में लाया जाता है। इसका बीजरूप और मूल सिद्धान्त शुक्ल जी की आलोचना में ही है।
12. सरल शब्दों में कहें तो शुक्ल जी की आलोचना साहित्य को जीवन में और जीवन को साहित्य में प्रतिष्ठित करने वाली आलोचना है।
13. आचार्य शुक्ल ने साहित्य-रचना में भाव को बहुत महत्व दिया है और रस-मीमांसा में भाव के स्वरूप को कई स्थानों पर स्पष्ट किया है। इस क्षेत्र में उनका बीज सिद्धान्त है कि भाव की प्रतिष्ठा से प्राणियों के कर्मक्षेत्र का विस्तार बढ़ गया है। ये भाव जिस मन में उत्पन्न होते हैं वह अध्यात्म की विषयवस्तु न होकर दृश्यमान जगत का प्रतिरूप भर है। भाव की साधना को शुक्ल जी कर्म और ज्ञानयोग की साधना के समकक्ष माना है और बार-बार कहने की ज़रूरत नहीं कि यह भाव लोक-सामान्य का भाव ही है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि मुक्तहृदय मनुष्य अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है और यही मुक्तहृदय मनुष्य ही सच्चा कवि या साहित्यकार हो सकता है।
14. कविता के कलापक्ष या रूपविधान के लिए शुक्ल जी की स्पष्ट स्थापना है कि जगत ही काव्य का मूल कारण है। जगत अपार अगाध रूप समुद्र है और इसी की रूप तंगों से मनुष्य की कल्पना का निर्माण और उसके भीतर विविध भावों या मनोविकारों का विधान हुआ है, जो कविता में दिखाई देते हैं।
15. शुक्ल जी के अनुसार रूप-विधान तीन प्रकार के होते हैं -

1. प्रत्यक्ष रूप-विधान

2. स्मृत रूप-विधान

3. संभावित या कल्पित रूप-विधान

प्रत्यक्ष रूप-विधान से मन में प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं का प्रतिबिम्ब खड़ा होता है। जब अतीत में प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं के रूप-व्यापार का स्मरण करके हम रस-निमग्न हो उठते हैं, उस समय हमारे मन में स्मृत रूप-विधान होता है। लेकिन कवि एक और प्रकार का रूप-विधान करते हैं। इसमें वे देखे हुए या जाने हुए पदार्थों के आधार पर नवीन वस्तु-योजना प्रस्तुत करते हैं, इसी को संभावित या कल्पित रूप-विधान कहते हैं। रस की प्राप्ति तीनों से होती है पर कवि का विधान मुख्यतः तीसरा है। शुक्ल जी रस-मीमांसा में लिखा है - संभावित या कल्पित रूप-विधान द्वारा जागरित मार्मिक अनुभूति तो सर्वत्र काव्यानुभूति या रसानुभूति मानी जाती है। यहाँ स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि शुक्ल जी कल्पना को यथार्थजनित ही मानते हैं, पारलौकिक नहीं। कल्पना का सम्बन्ध प्रत्यक्ष वस्तुओं से होता है, शुद्ध कल्पना जैसी कोई वस्तु नहीं होती।

1. हालाँकि शुक्ल जी पाश्चात्य मान्यताओं से परिचित और प्रभावित थे लेकिन योरोप में चल रहे आंदोलनों किंवा वादों-प्रवादों से वे सहमत नहीं थे। वे वादों की इस भीड़ को त्वरित प्रतिक्रिया भर मानते थे और उनके लिए इनका कोई स्थायी मूल्य तथा महत्व नहीं था।
2. शुक्ल जी पर आलोचक के रूप में कुछ आक्षेप भी हैं। उन्होंने कबीर जैसे नितान्त सामाजिक संदर्भों वाले कवि को अनदेखा कर एक ऐतिहासिक भूल की, जिसका परिमार्जन उनके बाद की पीढ़ी में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' नामक पुस्तक लिखकर किया। वे आदिकाल के काव्य में भी बौद्ध सिद्धों, जैन श्रावकों और नाथयोगियों के काव्य के साथ न्याय नहीं कर पाए। मनोवैज्ञानिक आलोचन का प्रतिष्ठाता होने के बावजूद आधुनिककाल में छायावाद तथा उसके निराला, पंत और महादेवी जैसे कवि उनके कोपभाजन बने।

19.4 शुक्ल-युग के अन्य आलोचक

श्यामसुंदर दास

श्यामसुंदर दास यो तो शुक्ल जी से पहले हिंदी जगत में आ चुके थे और यथाशक्ति अपनी पूरी प्रतिभा के साथ उसकी सेवा कर रहे थे पर जब बात आलोचना की होती है तो उन्हें शुक्ल-युग का ही आलोचक माना जाता है। श्यामसुंदर दास का आलोचना को सबसे बड़ा योगदान 'साहित्यालोचन' नामक पुस्तक है। यह पुस्तक भारतीय काव्यशास्त्र और पश्चिमी साहित्य सिद्धान्तों को आमने-सामने रखते हुए आलोचना के विविध रूपों से परिचित कराती है। श्यामसुंदर दास की दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक 'काव्य का विवेचन' है, जिसमें काव्य का सर्वांग परीक्षण किया गया है। उनकी अगली पुस्तक 'गद्य काव्य का विवेचन' है, जिसमें उन्होंने उपन्यास और नाटक के भेद-

अभेद, उपन्यास के तत्व, उपन्यासों में जीवन का चित्रण, उपन्यास में सत्यता अथवा यथार्थ, उपन्यास में नीति, कहानी के रूप-रचना सिद्धान्त-उद्देश्य और निबन्धकला पर विस्तार से लिखा है। अपनी तरह की यह पहली पुस्तक है जो गद्य की आलोचना का आरम्भिक किंतु महत्वपूर्ण प्रयास करती है। इसके अलावा व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में भी उन्होंने बहुत कार्य किया। कबीर ग्रंथावली की भूमिका उनकी व्यावहारिक आलोचना अच्छा परिचय मिलता है। इसके अलावा रामचंद्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य का इतिहास के एक साल बाद प्रकाशित उनकी साहित्येतिहास की पुस्तक 'हिन्दी साहित्य' में उन्होंने शुक्ल जी से असहमत होते हुए कुछ नई स्थापनाएँ दी हैं।

पदुमलाल पुन्ना लाल बख्शी

रामदरश मिश्र के शब्दों में श्यामसुंदर दास के साथ बख्शी जी का नाम इस अर्थ में लिया जा सकता है कि इन्होंने भी पाठकों के समक्ष देश और विदेश की विविध साहित्यिक सामग्री प्रस्तुत की। बख्शी जी का कार्य उतना विश्लेषणात्मक नहीं है, जितना परिचयात्मक। बख्शी जी का महत्व केवल इस बात में है कि इन्होंने बड़े उदार भाव से पूरब और पश्चिम के साहित्य का परिचय दिया और यह कार्य तब किया जब हिन्दी में इसकी आवश्यकता थी। 'विश्व साहित्य' और 'हिन्दी साहित्य विमर्श' बख्शी जी की दो प्रमुख पुस्तकें हैं। 'हिन्दी साहित्य का विमर्श' 1922-23 में लिखी गई यानी शुक्ल जी के हिन्दी साहित्य का इतिहास से पूर्वी।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

आचार्य शुक्ल की आलोचना ने दो धाराएँ स्थापित कीं - पहली जो उनकी मान्यताओं को जस का तस स्वीकार करती है और उनकी व्याख्याएँ प्रस्तुत करती है। दूसरी वह जिसमें सैद्धान्तिक क्षेत्र में नई स्थानाएँ और व्याख्याएँ की गईं। विश्वनाथप्रसाद मिश्र पहली परम्परा में आते हैं और उनका अपना मौलिक साहित्य सिद्धान्त देखने को नहीं मिलता। वाङ्मय विमर्श, बिहारी की वाग्विभूति, भूषण और घन आनन्द उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं। पुस्तकों के नाम से ही स्पष्ट है कि रीतिकालीन कविता पर उन्होंने काम किया है।

हिन्दी आलोचना में आचार्य शुक्ल का युग हिन्दी कविता में छायावाद का युग है, जिसका आचार्य शुक्ल ने विरोध किया क्योंकि वे स्वच्छंदता और रहस्यवाद को लोकमंगल में बाधक मानते थे। लेकिन छायावादी कविता और कवियों का अपना एक मनोसमाज था, जो वास्तविक मानव समाज में लगातार आवाजाही करता रहता था, उनका लोकमंगल की अवधारणा से कोई स्वभावगत विरोध नहीं था, जैसा शुक्ल जी को प्रतीत हुआ था। आचार्य शुक्ल ने इस आवाजाही और तथ्य पर ध्यान नहीं दिया और परिणामस्वरूप बीसवीं सदी के अत्यन्त महत्वपूर्ण महाकवि निराला से उनका वैचारिक संघर्ष लम्बे समय तक तत्कालीन हिन्दी समाज में हलचल का सबब बना रहा। छायावाद के समर्थन में निराला, प्रसाद, पंत और महादेवी वर्मा ने पर्याप्त आलोचनात्मक लेखन किया, जिसका

ऐतिहासिक महत्व है। इसके अलावा शुक्ल-युग के प्रमुख आलोचकों में जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, गुलाब राय, लक्ष्मीनारायण सुधांशु कृष्ण शंकर शुक्ल, केसरी नारायण शुक्ल और सत्येन्द्र का नाम आता है।

1. बोध प्रश्न

क . निम्न प्रश्नों के सही विकल्प चुनिए

1. निम्न में कौन शुक्ल-युग का आलोचक नहीं है -

(अ) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

(ब) बालकृष्ण भट्ट

(स) जयशंकर प्रसाद

(द) सत्येन्द्र

2. रामचंद्र शुक्ल का जन्म कब हुआ -

(अ) 1882

(ब) 1892

(स) 1884

(द) 1886

3. निम्न में कौन-सी आचार्य शुक्ल की पुस्तक नहीं है-

(अ) रस-मीमांसा

(ब) साहित्यालोचन

(स) गोस्वामी तुलसीदास

(द) महाकवि सूरदास

4. निम्न से किस पश्चिमी विचारक का प्रभाव आचार्य शुक्ल पर पड़ा-

(अ) नीत्शे

(ब) सात्र

(स) हैकल

(द) मार्क्स

बोध प्रश्न 2 . सत्य/असत्य चुनिए

1. आचार्य शुक्ल के निबन्धों में उनकी आलोचना के सूत्र मिलते हैं -

(अ) सत्य

(ब) असत्य

2. आचार्य शुक्ल काव्य में लोकमंगल की साधना को आवश्यक मानते हैं -

(अ) सत्य

(ब) असत्य

3. आचार्य शुक्ल ने आलोचना में मनोविश्लेषण का सूत्रपात किया-

(अ) सत्य

(ब) असत्य

4. आचार्य शुक्ल ने रससूत्र की व्याख्या की-

(अ) सत्य

(ब) असत्य

19.6 हिन्दी आलोचना में शुक्ल-युग का योगदान

रामचंद्र शुक्ल और उनका युग हिन्दी आलोचना के विकासक्रम में एक महत्वपूर्ण पड़ाव की तरह है, जहाँ हिन्दी साहित्य के इतिहास की सैद्धान्तिक पड़ताल, समीक्षा और आलोचना में नए मूल्यों का आग्रह, वैज्ञानिक जीवनदृष्टि, साहित्य की सामाजिकता, पश्चिमी साहित्यशास्त्र से साक्षात्कार आदि कई पक्ष सामने आते हैं। हिन्दी आलोचना का आधुनिक स्वरूप और दिशा यहाँ से निर्धारित होते हैं। इस पूरे युग पर आचार्य शुक्ल के विराट व्यक्तित्व की मौलिक छाप है। उनके साहित्य सिद्धान्तों में से कुछ अपवादों को छोड़कर, अधिकांश आज भी प्रभावी हैं और साहित्य

विमर्श का हिस्सा बनते हैं। इन सभी पर पहले ही लिखा जा चुका है इसलिए यहाँ फिर से उल्लेख आवश्यक नहीं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि द्विवेदी-युग में प्रकट हुई आधुनिक हिंदी आलोचना ने अपना निजी और अलग रूप शुक्ल जी की आलोचना में पाया जो सामान्य जन-जीवन, वास्तविक मानव समाज और व्यक्ति के भावों का उत्सव मनाती है। जहाँ कल्पना भी यथार्थ से जुड़ जाती है, जहाँ एक आम आदमी को कविता का आस्वाद पाने का अधिकार है, जहाँ विशिष्टता और सामन्ती जीवनमूल्यों का नकार और मनुष्य के पक्ष में आधुनिक वैज्ञानिक भावबोध का गहरा स्वीकार है। आचार्य शुक्ल की आलोचना प्राचीन साहित्य की युगानुकूल व्याख्या करती है, उसमें अपने युग की दृष्टि के अनुरूप सौन्दर्य का संधान करती हुई उसे फिर से अर्थ और सन्दर्भवान बना देती है। इस प्रकार उनकी आलोचना में हमारा महान साहित्य जातीय चिन्तन और भावना अंग बना रहता है। शुक्ल जी कविता के रूप-विधान पर लिखते हुए सम्भावित या कल्पित रूप-विधान के निकट अवश्य बताया है किंतु कल्पना का वास्तविक अर्थ भी स्पष्ट किया है। कल्पित रूप-विधान यथार्थ से कटी हुई नहीं, बल्कि यथार्थ से जुड़ी हुई और उसके मानसिक विस्तार से जुड़ी वस्तु है। यह कल्पना प्रत्यक्ष जगत के दृश्यमान प्रतिबिम्बन से उत्पन्न कल्पना है, कवि के मन जन्मी कोरी और कृत्रिम कल्पना नहीं। कल्पना के नाम पर अतिरेकपूर्ण कलाबाजियों का शुक्ल जी विरोध किया है और रीतिकालीन कवियों- केशव, बिहारी, छायावादी कवियों और पश्चिम के कमिंगज़ आदि कवियों की आलोचना वे इसी दृष्टि के साथ करते हैं।

3 बोध प्रश्न

ग . निम्न विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

- (1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का व्यक्तित्व।
- (2) लोकमंगल की अवधारणा।
- (3) हिंदी आलोचना में रामचंद्र शुक्ल का स्थान।
- (4) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रमुख आलोचना सिद्धान्त।
- (2) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कृतित्व ।

19.7 सारांश

यह इकाई रामचंद्र शुक्ल की आलोचना के स्वरूप को स्पष्ट करती है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालती है। उनकी आलोचना के सिद्धान्तों से परिचय और उनकी पड़ताल करती है। हिंदी आलोचना में शुक्ल जी के महत्व को विद्यार्थी के सामने रखती है, जिससे उसे शुक्ल जी से पहले और उनके बाद की आलोचना का स्वरूप पहचानने में भी सहायता मिलती है। इस इकाई में

आचार्य शुक्ल के आलोचना सिद्धान्तों को विस्तार से बिंदुवार प्रस्तुत किया गया है, जो सरलता से विद्यार्थी में विषय के प्रति रुचि और समझ विकसित करता है। प्रयास किया गया है कि जटिल और बौद्धिक विमर्श होने के बावजूद शुक्ल जी की आलोचना को सरलतम रूप में विद्यार्थी के लिए ग्राह्य बनाया जा सके। शुक्ल जी के युग में और उसके बाद भी उनके समर्थन और असहमति की दो विरोधी धाराएँ हिन्दी आलोचना में विद्यमान थीं, इस इकाई में उन दोनों का ही संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है ताकि विद्यार्थी उस सैद्धान्तिक द्वन्द्व को पहचान सके जिससे किसी भी देश की भाषा और साहित्य में आलोचना के मूल स्वरूप का निर्माण होता है। इस इकाई में शुक्ल जी की सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्सम्बन्धों पर भी स्पष्ट टिप्पणी है, जिससे आलोचना की विश्वसनीयता को परखने के सूत्र भी विद्यार्थी प्राप्त कर सकता है। पूर्ववर्ती युग से तुलना करते हुए शुक्ल-युग के महत्व को इस इकाई में सैद्धान्तिक आधार पर रेखांकित किया गया है, ताकि विद्यार्थी के आगे यह जटिल विमर्श सरल शब्दों में खुल सके। संक्षेप में यह इकाई आचार्य शुक्ल की आलोचना सभी महत्वपूर्ण पक्षों, उनके युग और अतीत-वर्तमान के समीकरणों को हल करने का उपक्रम करते हुए विद्यार्थी को साहित्य के पाठ से सम्बन्धित बौद्धिक विमर्श के लिए तैयार करती है।

19.8 शब्दावली

श्वास	-	साँस
सैद्धान्तिक	-	सिद्धान्त संबंधी
शोषक	-	शोषण करने वाला, अत्याचारी
प्रतीति	-	विश्वास
मीमांसा	-	समीक्षा, परीक्षा
कृत्रिम	-	बनावटी
उपक्रम	-	प्रयास

19.9 सहायक पाठ्य सामग्री

हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल

गोस्वामी तुलसीदास - रामचंद्र शुक्ल

महाकवि सूरदास - रामचंद्र शुक्ल

जायसी ग्रंथावली - रामचंद्र शुक्ल

चिंतामणि:तीनों भाग- रामचंद्र शुक्ल

रस-मीमांसा- रामचंद्र शुक्ल

हिंदी आलोचना- विश्वनाथ त्रिपाठी

हिंदी साहित्य कोश-भाग दो

रामचंद्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध - डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र/विनोद तिवारी

हिंदी आलोचना के बीजशब्द - बच्चन सिंह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना का अर्थ: अर्थ की आलोचना- रामस्वरूप चतुर्वेदी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास की रचना-प्रक्रिया- समीक्षा ठाकुर

इतिहास और आलोचना- नामवर सिंह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना- रामविलास शर्मा

हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल: आलोचना के नए मानदंड- भवदेव पांडेय

19.10 निबंधात्मक प्रश्न

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'साहित्य में जीवन और जीवन में साहित्य की स्थापना के आलोचक है' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

(2) हिंदी आलोचना के विकासक्रम पर प्रकाश डालते हुए रामचंद्र शुक्ल और उनके युग का महत्व स्पष्ट कीजिए।

इकाई 20 शुक्लोत्तर युग एवं हिन्दी आलोचना

- 20.1 प्रस्तावना
- 20.2 उद्देश्य
- 20.3 पूर्वपीठिका: छायावादी कवियों /आलोचकों की आलोचना-दृष्टि
- 20.4 हिन्दी आलोचना और शुक्लोत्तर युग
- 20.5 पं. नन्ददुलारे वाजपेयी
- 20.6 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
- 20.7 डॉ. नगेन्द्र
- 20.8 डॉ. देवराज
- 20.9 सारांश
- 20.10 शब्दावली
- 20.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 20.12 सहायक पाठ्य सामग्री
- 20.13 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित है-

इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी आलोचना के सर्वाधिक महवपूर्ण हस्ताक्षर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ-साथ उनकी महत्वपूर्ण आलोचना दृष्टि का परिचय प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप जान सकेंगे की शुक्लोत्तर आलोचना शुक्ल जी की समानुवर्ती और विरोधी धाराओं में विकसित हुई है। सैद्धान्तिक समीक्षा में यह विकास साफ़ दिखाई पड़ता है। शुक्ल जी के तुरत बाद हिन्दी में प्रगतिशील धारा का भी विकास हुआ, जिस पर तीसरी इकाई के अन्तर्गत विस्तार से विचार किया जाएगा। व्यावहारिक आलोचना के पीछे निश्चित रूप से सिद्धान्त ही प्रभावी होते हैं, जैसा कि शुक्ल जी की आलोचना के बारे में विचार करते हुए हमने जाना। शुक्लोत्तर युग में चार आलोचक विशेषतया सक्रिय रहे हैं - पं. नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र और डॉ. देवराज। इनके अतिरिक्त भी कुछ नाम हैं, चार प्रमुख आलोचकों समेत जिन पर इस इकाई में प्रकाश डाला जाएगा।

20.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई शुक्ल जी के देहावसान के बाद हिन्दी आलोचना में महत्व प्राप्त करने आलोचकों और उनकी आलोचना-दृष्टि पर केंद्रित है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- शुक्ल जी के युग में ही उनसे असहमति रखने वाले छायावादी रचनाकारों / आलोचकों की आलोचना दृष्टि से परिचित प्राप्त कर सकेंगे।
- शुक्लोत्तर युग की आलोचना के सैद्धान्तिक रूप का परिचय पा सकेंगे।
- शुक्लोत्तर युग के आलोचक पं. नंददुलारे वाजपेयी की आलोचना दृष्टि से अवगत होंगे।
- शुक्लोत्तर युग के आलोचक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि से परिचय प्राप्त करेंगे।
- शुक्लोत्तर युग के अन्य आलोचकों से परिचित होंगे।

20.3 पूर्वपीठिका: छायावादी कवियों/आलोचकों की आलोचना

आचार्य शुक्ल के समकालीन कवियों में प्रसाद, पंत और निराला छायावाद की वृहत्त्रयी के रूप में प्रसिद्ध थे और चौथा नाम महादेवी वर्मा का लिया जाता था। ये कवि शुक्ल जी की छायावादसम्बन्धी स्थापनाओं से सहमत नहीं थे, जिनके अनुसार छायावाद का वैचारिक स्रोत पश्चिमी था और ईसाई संतों का रहस्य अथवा छायाभास बंगाल से होता हुआ हिंदी में पहुँचा था। आचार्य शुक्ल तो छायावाद को वैचारिक आंदोलन न मानकर महज शैली मानते थे। यहाँ इन्हीं तथ्यों के प्रकाश में छायावादयुगीन कवियों/आलोचकों की मान्यताओं पर प्रकाश डाला जाएगा।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में कई स्थलों पर शुक्ल जी की धारणाओं खंडन किया है -विज्ञ समालोचक भी हिंदी की आलोचना करते-करते छायावाद, रहस्यवाद आदिवादों की कल्पना करके उन्हें विजातीय, विदेशी तो प्रमाणित करते ही हैं, यहाँ तक कहते हुए लोग सुने जाते हैं कि वर्तमान हिंदी कविता में अचेतनों में, जड़ों में चेतनता का आरोप करना हिंदीवालों ने अंग्रेजी से सीखा....कहीं अंग्रेजी में उन्होंने देखा कि 'गाड दज़ लव' फिर क्या, कहीं भी हिंदी में ईश्वर के प्रेम रूप का वर्णन देखकर उन्हें अंग्रेजी के अनुवाद या अनुकरण की घोषणा करनी पड़ी। स्पष्ट है कि प्रसाद जी का यह कथन स्वयं उनकी कविता और उस पर आचार्य शुक्ल के आक्षेप की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुआ।

प्रसाद जी के अनुसार 'काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति' है। वे लिखते हैं - आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तुत रहस्यवाद के विरोध के विषय में प्रसाद जी अपने 'रहस्यवाद' नामक निबन्ध में कहते हैं - भारतीय विचारधारा में रहस्यवाद को स्थान न देने का एक मुख्य कारण है। ऐसे आलोचकों के मन में एक तरह की झल्लाहट है। रहस्यवाद के आनन्द-पथ को उनके कल्पित भारतीयोचित विवके में सम्मिलित करने से आदर्शवाद का ढाँचा ढीला पड़ जाता है....आनन्द-भावना, प्रिय कल्पना और प्रमोद हमारी व्यवहार्य वस्तु थी। आज की जातिगत निर्वीयता के कारण उसे ग्रहण न कर सकने पर यह सेमेटिक है, कहकर संतोष कर लिया जाता है....वर्तमान हिंदी में अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है...वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें संदेह नहीं।

प्रसाद जी ने 'यथार्थवाद और छायावाद' नामक एक महत्वपूर्ण निबन्ध लिखा, जिसमें स्पष्ट किया गया कि कल्पना और रहस्य के बावजूद छायावाद यथार्थ से कटा हुआ नहीं है। साथ ही प्रसाद

जी ने यथार्थ के आधार पर गद्य साहित्य का आकलन करते हुए उसे ही यथार्थ का मुख्य वाहक माना, जो उनके समकालीन कथाकार प्रेमचंद के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है।

सुमित्रानन्दन पंत

सुमित्रानन्दन पंत ने प्रसाद और निराला की तरह प्रचुर मात्रा में गद्य लेखन नहीं किया किंतु अपने कविता संग्रहों की भूमिका वे लिखा करते थे, जिनमें अपने समय की आलोचकीय स्थापनाओं और दृष्टि के प्रति उनका विचार-विमर्श जानने को मिलता है। पंत जी ने अपनी इन भूमिकाओं में खड़ी बोली के काव्य का औचित्य सिद्ध किया और मुक्तछंद के समर्थन में अपनी राय भी व्यक्त की। वे कविता में चित्रभाषा के समर्थक थे। उन्होंने अपनी कविता 'परिवर्तन' और निराला की कुछ पंक्तियों का विश्लेषण किया, जिसे प्रसिद्ध आधुनिक आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी व्यावहारिक आलोचना मानते हैं।

निराला

निराला ने अपने समानधर्मा छायावादियों के भावोच्छवासीय गद्य से अलग बुद्धिप्रवण और तर्कपूर्ण गद्य लिखा, जिसमें साहित्य की सैद्धान्तिक समस्याओं का विश्लेषण करने का सामर्थ्य था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की ही भाँति वे भी संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी आदि का अच्छा ज्ञान रखते थे और इन सभी भाषाओं के साहित्य को उन्होंने ने मूल में पढ़ा हुआ था। उन्होंने 'रवीन्द्र कविता कानन' नाम से एक पृथक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी और उनके कई निबन्धों में सैद्धान्तिक आलोचना का एक स्पष्ट आकार उभरता है। उनके साहित्यिक निबन्ध सैद्धान्तिक आलोचना का एक प्रखर उदाहरण पाठकों के सामने रखते हैं। उनके वाक्य भी आचार्य शुक्ल की तरह सूक्तिबद्ध होते थे और इस कारण बड़ी सरलता से याद भी रह जाते हैं। उदाहरण के लिए -

गद्य जीवन-संग्राम की भाषा है।

कविता परिवेश की पुकार है।

ये दोनों ही वाक्य सूक्तिमात्र नहीं हैं, बल्कि दो अलग विधाओं पर सैद्धान्तिक विमर्श की शुरुआत भी हैं। इसे संयोगभर न माना जाए कि छायावाद की कसौटी पर दो विपरीत ध्रुवों पर खड़े आचार्य शुक्ल और महाकवि निराला के भक्तिकालीन प्रिय कवि तुलसी ही हैं। तुलसी पर निराला एक लम्बी कविता भी लिखी। आचार्य शुक्ल के साथ हुए विवाद के अतिरिक्त निराला की आलोचना का प्रखरतम रूप उनके आलेख 'पंत और पल्लव' में प्रकट हुआ है। अपने ही समानधर्मा कवि की कविता पर ऐसी पैनी आलोचना सम्भवतः आज तक किसी कवि ने नहीं की होगी। निराला की जीवन और साहित्यदृष्टि आधुनिक और नवीन थी। अपने पारम्परिक परिवेश और संस्कारों के बावजूद उनमें पुरातन अथवा सनातन के लिए कोई हठधर्मिता नहीं थी। उनके भाषाई संस्कारों के

लिए भी यही बात कही जा सकती है और ये दोनों उनके इस कथन से सिद्ध हो जायेंगी - आज आब और हवा हर वक्रत नए हैं, यहाँ तक कि कूपमंडूक को भी कँुए के अतल सोते से नया ही नया जल मिलता है। हम नवीनता को ही यहाँ सनातन कहेंगे। नवीनता के प्रति ऐसा आग्रह निराला के समय में खुद एक नई और विरल वस्तु है। निराला की आलोचना-दृष्टि के बारे में विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं - छायावादी कवियों के पास ही नहीं उनके अधिकांश समकालीन साहित्यकारों के पास उनकी जैसी मर्मभेदिनी काव्यदृष्टि नहीं थी। उनका गद्य यथार्थवादी था। उन्होंने भाषा, छंद स्थानीयता, सार्वदेशिकता, समसामयिकता आदि के जो प्रश्न उठाए हैं, वे आज भी महत्वपूर्ण हैं। समालोचना के नाम पर उन्होंने काव्य-सिद्धान्तों का प्रतिपादन न करके कविता की व्यावहारिक समीक्षा की है। कविता और कविता की आलोचना, दोनों दृष्टियों से निराला आज छायावादी कवियों में सबसे अधिक सन्दर्भवान है।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का आलोचनात्मक लेखन 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' नामक पुस्तक में संकलित है। इस पुस्तक के निबन्धों के विषय काव्यकला, छायावाद, रहस्यवाद, गीतिकाव्य, यथार्थ और आदर्श, सामयिक समस्या आदि हैं। आलोचना की दृष्टि से देखें तो महादेवी जी काव्य का साध्य सत्य को मानती हैं। काव्यसाधना सत्य की साधना है और सौन्दर्य उसका साधन। आचार्य शुक्ल की तरह महादेवी भी साधारण की अभिव्यक्ति को महत्व देती हैं। उनका योगदान साहित्य में स्त्रीविमर्श का आरम्भ करने में भी है। उनकी छायावादी अभिव्यक्ति कहीं न कहीं स्त्रीमन की मुक्ति से जुड़ी हुई वस्तु है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी

शान्तिप्रिय द्विवेदी शुक्ल जी के समय में छायावाद के प्रमुख प्रवक्ता बनकर उभरे और उसमें विशेष रूप से पंत जी के काव्य के। प्रभाववादी आलोचना से शुरू होकर व्याख्यात्मक आलोचना तक पहुँचने वाले शान्तिप्रिय द्विवेदी जी का आलोचना के क्षेत्र में उतना भी महत्व नहीं है, जितना खुद छायावादी कवियों का। प्रभाववादी आलोचना को आलोचना कहा जाए कि नहीं - यह आज भी विवाद का विषय है। आचार्य शुक्ल भी हिंदी साहित्य का इतिहास में आधुनिक गद्य पर लिखते हुए इस तरह की आलोचना को खारिज करते हैं - प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा कोई ठीक-ठिकाने की वस्तु ही नहीं। न ज्ञान के क्षेत्र में उसका कोई मूल्य है न भाव के क्षेत्र में। उसे समीक्षा या आलोचना कहना ही व्यर्थ है। स्वयं शान्तिप्रिय द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल पर वस्तुनिष्ठ होने का आरोप लगाते हुए कहा था कि वे वस्तु में निहित भाव तक नहीं पहुँच पाते। आचार्य शुक्ल की आलोचना दृष्टि से परिचित जन जानते हैं कि भावजगत का आचार्य शुक्ल के आलोचनाकर्म में कितना महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसा कहना शायद गलत नहीं होगा कि सैद्धान्तिक आलोचना में गति न रखनेवाले शान्तिप्रिय द्विवेदी जैसे आलोचक में वह सामर्थ्य हो ही नहीं सकता कि वह आचार्य शुक्ल

पर आक्षेप कर उसे प्रमाणित भी कर सके। सैद्धान्तिक भूमि पर विमर्श कर सकने वाली ऐसी बौद्धिक प्रतिभा छायावाद में सिर्फ प्रसाद और निराला के पास थी।

20.4 हिन्दी आलोचना और शुक्लोत्तर युग

जैसा कि हम देख आए हैं शुक्ल जी के समय की आलोचना में उनका वर्चस्व रहा और उनके समय की हिन्दी आलोचना अधिकांशतः उनके समर्थन या विरोध की भावना से ही संचालित रही। शुक्ल जी के समय में सैद्धान्तिक आलोचना करते हुए किसी को भी शुक्ल जी के सिद्धान्तों से रू-ब-रू होना ज़रूरी हो गया था। शुक्ल जी के बाद भी यह क्रम जारी रहा और शुक्लोत्तर युग के आलोचकों ने कई विषयों पर विचार करते हुए शुक्ल जी धारणाओं पर गम्भीर और तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की तो कहीं उनसे सहमति भी। अर्थात् शुक्लोत्तर आलोचना में भी शुक्ल जी की उपस्थिति प्रकारांतर से बनी ही रही। दरअसल सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना की जो पद्धति रामचंद्र शुक्ल ने स्थापित की, उनके विरोधी और समर्थक, दोनों ही उस पर चले। प्रभाववादी आलोचना का विरोध शुक्ल जी ने किया था, जो उनके बाद भी बना रहा। वास्तव में किसी रचनाकार या रचना के तात्कालिक प्रभाव में सिद्धान्तहीन समीक्षा साहित्य में कोई स्थायी योगदान नहीं कर सकती। शुक्ल जी के बाद के सभी प्रमुख आलोचक इस बात पर सहमत रहे। कुछ जो कला या रूपवादी हुए उन्हें यह प्रभाववादी आलोचना रास आयी और उन्होंने इसके लिए पश्चिमी पद्धति का सहारा यह कहते हुए लिया कि जब हम दूसरी विचार सरणियाँ पश्चिम से ले सकते हैं तो यह क्यों नहीं, किन्तु ऐसे आलोचकों का कोई खास महत्व हिन्दी आलोचना में न था और न है।

शुक्लोत्तर युग के प्रमुख आलोचकों और उनकी आलोचना दृष्टि पर निम्नवत विचार किया जा सकता है -

20.5 नन्ददुलारे वाजपेयी

नन्ददुलारे वाजपेयी का जन्म 1906 में हुआ। इनका जन्मस्थान उन्नाव का मगरैल गाँव है। वाजपेयी जी के जन्म का समय हिन्दी में शुक्ल जी के उदय का समय भी है। वाजपेयी जी के पिता अपने समय के साहित्य से प्रभावित थे और उनसे ये संस्कार वाजपेयी जी में आया। 1929 में उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से एम.ए. हिन्दी की परीक्षा सर्वोत्तम अंकों से उत्तीर्ण की। वे अपने समय में हिन्दी चंद उच्च शिक्षित विद्वानों में एक और बाबू श्यामसुन्दर दास के प्रिय शिष्य थे। उन्हीं के प्रोत्साहन से उन्होंने हिन्दी में अनुसंधान का मार्ग अपनाया। 1932 में वे हिन्दी के तत्कालीन प्रसिद्ध पत्र भारत में सम्पादक हो गए और आधुनिक लेखकों पर विचारशील समीक्षात्मक निबन्ध लिखना आरम्भ किया, जिनका संकलन बाद में जयशंकर प्रसाद और हिन्दी साहित्य: बीसवीं सदी नामक

प्रसिद्ध पुस्तकों के रूप में हुआ। इस पत्र को छोड़ जल्द ही वे पुनः बनारस आ गए जो तब तक हिंदी साहित्य और उसमें भी आचार्य शुक्ल के कारण हिंदी आलोचना के केन्द्र के रूप में पहचान बना चुका था। वहाँ उन्हें नागरी प्रचारिणी सभा में सूरसागर के सम्पादन का कार्य मिला, जिसे कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने के बाद वे रामचरितमानस के सम्पादन के आमंत्रण पर गीता प्रेस गोरखपुर गए पर गीताप्रस के संचालकों से नीतिगत मतभेदों के कारण प्रयाग आ गए और स्वतंत्र लेखन करने लगे। 1941 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति हो गई। यहाँ से आलोचना में उनकी ख्याति और मौलिक कार्य के आधार पर उन्हें सागर विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। कई वर्ष वहाँ कार्य करने के बाद विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन में कुलपति बने और महाकाल की उसी नगरी में 1967 में वाजपेयी का देहान्त हो गया।

जैसा कि पूर्व में एकाधिक बार कहा जा चुका है, शुक्लोत्तरयुगीन आलोचना पर शुक्ल जी की आलोचना के सन्दर्भों और प्रसंगों के साथ ही विचार किया जा सकता है। शुक्ल जी के तुरत बाद के महत्वपूर्ण आलोचकों में नन्ददुलारे वाजपेयी का नाम सर्वोपरि है और उनकी विख्यात आलोचना पुस्तक 'हिंदी साहित्य: बीसवीं सदी' में रामचंद्र शुक्ल पर तीन लेख मौजूद हैं। इनमें से दो लेखों में शुक्ल जी की समीक्षा की सीमाओं पर चर्चा है किंतु तीसरे में, जो कि उनकी मृत्यु के बाद लिखा गया, उनके महत्व और आलोचना में योगदान का गम्भीर एवं कृतज्ञतापूर्ण स्मरण है। वस्तुतः यही शुक्ल जी का आलोचक व्यक्तित्व है, जिससे असहमत होना अलग बात है पर उसके प्रति आभार का भाव अनिवार्य रूप से साथ ही बना रहता है। वाजपेयी जी हिंदी आलोचना में छायावादी काव्य के समीक्षक के रूप में आए। सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में वे पहले आलोचक हैं जिन्होंने छायावादी काव्य का स्थूल विरोध करने के स्थान पर युगीन स्थितियों में उसके स्थापना के बीजसूत्र खोजे और उनका गहन तथा सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया। ध्यान देने की बात है कि आचार्य शुक्ल ने छायावादी काव्य का विरोध जिन लेखों में किया वे कालक्रम की दृष्टि से वाजपेयी जी के बाद लिखे गए।

नन्ददुलारे वाजपेयी के आलोचना सिद्धान्तों और महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदुओं को निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. वाजपेयी जी पहले आलोचक हैं जिन्होंने सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में छायावादी काव्य की नई भावधारा, नए जीवनदर्शन, नई कल्पना दृष्टि, बिम्ब तथा प्रतीकयोजना और नितान्त नए भाषा रूपों को युगीन परिस्थितियों के धरातल पर समझा और समझाया।
2. शुक्ल जी हालाँकि रहस्यवाद का विरोध किया था पर यह विरोध भावलोक के रहस्य से नहीं था। वाजपेयी जी ने इसी को अपना प्रस्थानबिंदु बनाया और छायावादी रहस्यभावना का समर्थन किया।

3. वाजपेयी जी काव्य के अन्तःसौन्दर्य को उद्घाटित करने वाले आलोचक हैं। आधुनिक हिंदी कविता का सौन्दर्यशास्त्र अब तक या तो रससिद्धान्त के बोझ तले दबा हुआ था या फिर कोरे अलंकरण के विमर्श की विषयवस्तु समझा जाने के कारण उपेक्षित ही रहा था। वाजपेयी जी ने छायावादी कवियों में इस सौन्दर्य के गहन, एकान्तिक किंतु प्रभावशाली आयाम देखे और शुक्ल जी की स्थापनाओं के विरुद्ध उसके युगीन महत्व को रेखांकित किया - इस कार्य में उन्होंने शुक्ल जी के ही सिद्धान्त 'कल्पना यथार्थजनित या दृश्यमान जगत का प्रतिरूप होती है' की सहायता ली और छायावादी कविता के पक्ष में उसे विकसित किया।
4. वाजपेयी जी ने कविता में अध्यात्म का पक्ष लिया और छायावाद की सौन्दर्यचेतना के महत्व को स्वीकारते हुए उसमें अध्यात्म की भूमिका को रेखांकित किया। उनके अनुसार सौन्दर्य की स्थूलता या सूक्ष्मता समझ में आनी मुश्किल है, इसके अलावा आध्यात्मिक छाया भी व्याख्या-सापेक्ष होती है।
5. वाजपेयी जी ने अपनी पहली पुस्तक हिंदी साहित्यः बीसवीं शताब्दी में सैद्धान्तिक समीक्षा अथवा आलोचना के सात बीजसूत्रों का उल्लेख वरीयता क्रम में किया है -
 1. रचना में कवि की अन्तर्वृत्तियों का अध्ययन।
 2. रचना कवि की मौलिकता, शक्तिमत्ता और सृजन की लघुता-विशालता(कलात्मक सौष्ठव) का अध्ययन।
 3. रीतियों, शैलियों और रचना के बाह्यांगों का अध्ययन।
 4. रचना में सामाजिक स्थितियों का चित्रण।
 5. रचना के प्रेरणा की खोज और विश्लेषण।
 6. कवि की व्यक्तिगत परिस्थितियाँ, प्रभाव और विचार।
 7. रचना में अवस्थित कवि का सम्पूर्ण जीवनदर्शन।

इस तरह वाजपेयी जी ने कविता को समझने के लिए एक विस्तृत फलक तैयार किया जिसके महत्वपूर्ण बिंदुओं की वरीयता आलोचक की अपनी धारणाओं के अनुसार हो सकती है किंतु बिंदु प्रायः वही रहेंगे।

6. वाजपेयी जी की 32-33 तक की यानी आरम्भिक आलोचना कविता तक ही सीमित थी लेकिन उसके बाद वे कथा और नाटक साहित्य के सम्पर्क में आए और अभिव्यक्ति में उनके महत्व को समझा। उन्होंने प्रसाद जी के उपन्यास कंकाल के यथार्थवाद को समझा और अपनी तर्कपूर्ण सहमति व्यक्त की। यह उनके आलोचनाकर्म का महत्वपूर्ण प्रस्थानबिंदु है। इसी क्रम में उनकी पुस्तक प्रेमचंद का भी नाम लिया जाएगा।

7. कंकाल के सन्दर्भ में ही वाजपेयी जी की रोचक धारणा सामने आयी जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि कंकाल में प्रोपेगेंडा है। अंग्रेज़ी आलोचना का यह पद उन्होंने इस्तेमाल किया और इसका समर्थन भी किया। वाजपेयी जी के लिए प्रोपेगेंडा दरअसल साहित्य में विचार और समकालीन जीवनदृष्टि का प्रचार है। उन्होंने प्रसाद जी के उपन्यास पर लिखते हुए कहा भी कि इस शब्द(प्रोपेगेंडा) से हिंदी के साहित्यिक डरते-से हैं, क्योंकि इसने प्रेमचंद जी को भी बदनाम किया है। पर वास्तव में यह डर मिथ्या है। स्वयं प्रेमचंद ने वाजपेयी जी को एक पत्र में लिखा था कि अगर प्रोपेगेंडा न हो, तो संसार में साहित्य की ज़रूरत न रहे। जो प्रोपेगेंडा नहीं कर सकता, वह विचारशून्य है और उसे कलम हाथ में लेने का अधिकार नहीं है। मैं उस प्रोपेगेंडा को गर्व से स्वीकार करता हूँ।
8. प्रगतिवाद की आलोचना करते हुए वाजपेयी का एक और सिद्धान्त सामने आया। वे साहित्य को द्वन्द्वात्मक मानने के पक्षधर नहीं थे जैसा कि सैद्धान्तिक रूप से प्रगतिवाद में था। वाजपेयी जी साहित्य की उत्तरजीविता और धारावाहिकता में विश्वास रखते थे। जीवन के प्रति किसी भी प्रकार की निषेधात्मक दृष्टि उन्हें स्वीकार नहीं थी। शुक्ल जी की ही भाँति वे भी साहित्य को वाद विशेष की परिधि से बाहर मानने के पक्षधर थे। छायावादी कवियों का समर्थन करते हुए भी उनकी धारणा थी कि वाद में फँसकर लेखक अपनी नैसर्गिक रचनात्मक प्रतिभा को कुंठित कर सकता है। प्रगतिशीलता पर अपना मत करते हुए आधुनिक साहित्य में उन्होंने लिखा - साहित्य के सभी नए आंदोलन एक अर्थ में प्रगतिशील कहे जा सकते हैं क्योंकि वे किसी न किसी नई सामाजिक या साँस्कृतिक प्रगति से उत्पन्न होते किसी न किसी नवीन विचारधारा के सहचर हुआ करते हैं।
9. वादविरोधी होते हुए भी वाजपेयी जी की मान्यता थी कि युगीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किए बिना कोई लेखक नहीं हो सकता। उनके अनुसार साहित्य का मानक वस्तुतः समकालीन जीवन चेतना में ही निहित है।
10. वाजपेयी जी के अनुसार साहित्य में आस्था और नैतिक चेतना, दो अनिवार्य तत्व हैं। नैतिक चेतना उनके अनुसार वह है जो मनुष्य के सम्बन्धों की सम्पन्नता को व्यक्त करे। यह वाजपेयी जी की सैद्धान्तिक आलोचना का एक स्पष्ट सामाजिक पक्ष है।
11. आलोचना के सामाजिक पक्ष के विषय में वाजपेयी जी का मत है कि हिंदी में समय के प्रवाह के अनुसार अब साहित्य के द्वारा सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा भी की जाने लगी है। साथ ही साहित्य की अभिव्यंजना शैलियों का इस रूप में विकास भी हो रहा है कि उन्हें समझने के लिए बुद्धि का अधिकाधिक आभास आवश्यक है। उन सबसे परिचित हुए बिना आलोचक बनने

की लालसा रखने पर बँधी हुई प्रतिष्ठा के खो जाने का खतरा भी है। कामायनी के सन्दर्भ में वाजपेयी जी ने स्पष्ट किया है कि कामायनी बुद्धि के विरोध नहीं बल्कि बुद्धिवाद की अति के विरोध का काव्य है। शुक्ल जी इसी अतिबुद्धिवाद को 'दुर्बुद्धि' कहते हैं।

20.6 आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

रामचंद्र शुक्ल के बाद हजारीप्रसाद द्विवेदी को आचार्य सम्बोधन मिला जो उच्चशिक्षा में प्राध्यापन करने भर का नहीं बल्कि विद्वता और समूचे व्यक्तित्व का द्योतक है। हजारी प्रसाद जी का जन्म 1907 में बलिया ज़िले के 'आरत दुबेका छपरा' नामक बहुत छोटे-से गाँव में हुआ। 1930 में उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय से ज्योतिषाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसी वर्ष अध्यापन के लिए शान्तिनिकेतन चले गए। शान्तिनिकेतन में टैगोर, क्षितिमोन सेन, विधुशेखर भट्टाचार्य आदि के सानिध्य से उनकी साहित्यिक सक्रियता बढ़ी। 1949 में लखनऊ विश्वविद्यालय ने उनकी साहित्यसेवा पर उन्हें डी.लिट. की उपाधि प्रदान की। 1950 में उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति के अनुरोध पर प्रोफेसर और हिंदी विभाग का अध्यक्ष पद स्वीकार किया। 1955 में वे पहले आफ्रिशियल लैंग्वेज कमीशन के सदस्य चुने गए। 1957 में भारत सरकार ने उन्हें नागरिक सम्मान 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया। 1958 में उन्हें नेशनल बुक ट्रस्ट का सदस्य बनाया गया। इसके अतिरिक्त कई वर्षों तक वे नागरी प्रचारिणी सभा के उपसभापति, खोज विभाग के निदेशक और नागरी प्रचारिणी पत्रिका के सम्पादक भी रहे। 1960 में पंजाब विश्वविद्यालय के कुलपति के निमंत्रण पर उन्होंने वहाँ के हिंदी विभाग के अध्यक्ष का पद स्वीकारा और चंडीगढ़ चले गए। 1968 में आचार्य द्विवेदी पुनः काशी हिंदू विश्वविद्यालय आ गए और रेक्टर पद पर नियुक्त हुए और फिर वहीं हिंदी के ऐतिहासिक व्याकरण विभाग के निदेशक का पदभार भी सँभाला। उत्तर प्रदेश की हिंदी ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष का दायित्व भी मिला। 1978 में द्विवेदी जी का देहावसान हो गया। 1973 में कुमाऊँ विश्वविद्यालय के प्रथम दीक्षान्त समारोह में दिया गया आचार्य द्विवेदी का बीजव्याख्यान उत्तराखंड के शिक्षाजगत में एक उपलब्धि की तरह है और आज भी याद किया जाता है।

मौलिकता और विभिन्न विषयों की विद्वता के धरातल पर आचार्य शुक्ल के बाद आचार्य द्विवेदी का ही नाम लिया जाता है। एक अर्थ में दोनों एक ही परम्परा के आचार्य और आलोचक हैं। ऐतिहासिक और सैद्धान्तिक आलोचना के क्षेत्र में आचार्य द्विवेदी ने आचार्य शुक्ल की सीमाओं के पार उनके छोटे हुए काम को आगे बढ़ाया। हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी का आदिकाल और कबीर - इन तीन पुस्तकों में आचार्य शुक्ल की स्थापनाओं अथवा सीमाओं से विरोध स्पष्ट दिखाई देता है। आचार्य द्विवेदी की सैद्धान्तिक आलोचना को क्रमवार निम्नवत देखा जा सकता है -

12. आचार्य शुक्ल के समय में हिंदी के आरम्भिक युग और भक्तिकाल से सम्बन्धित मूल ग्रंथों की खोज सीमित क्षेत्र में हो पायी थी। आचार्य द्विवेदी तक इस शोध का दायरा कहीं व्यापक हो गया और आचार्य शुक्ल के हिंदी साहित्य का इतिहास की कई सीमाएँ सामने आने लगीं और कुछ स्थापनाएँ भी विवादित हो गईं।
13. आचार्य शुक्ल ने नाथ, बौद्ध एवं जैन साहित्य को शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं माना था और अपने लिखे हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रथम काल का नामकरण बाक्री बचे रासो अथवा वीरकाव्य के नाम पर 'वीरगाथाकाल' रखना उचित समझा था। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस अव्याप्ति से हिंदी को उबारा और नाथयोगियों, बौद्धसिद्धों तथा जैन श्रावकों के काव्य को उसके पूरे ऐतिहासिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिप्रेक्ष में परखते और मान्यता देते हुए इस काल का नाम 'आदिकाल' रखा जो आज सर्वमान्य है। उनकी 'हिंदी का आदिकाल' नामक पुस्तक इस विषय पर सबसे प्रामाणिक आलोचना पुस्तक मानी जाती है। इससे यह भी पता चलता है कि आचार्य द्विवेदी अपनी आलोचना दृष्टि में कितने उदार थे। यह तथ्यपरक उदारता सैद्धान्तिक आलोचना में एक सिद्धान्त की तरह देखी जा सकती है।
14. हिंदी में भक्तिकाल के आरम्भ और उसमें निहित भक्तिआंदोलन के प्रारम्भिक सूत्रों पर शुक्ल जी की स्थापना किंचित साम्प्रदायिक हैं या कहे कि साम्प्रदायिक शक्तियाँ आसानी से उसका लाभ उठा सकती हैं। इस विषय को कुछ विस्तार से देखने की आवश्यकता है। खेद का विषय है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीरगाथा काल के चरण साहित्य को तो वीरता का गान कहा लेकिन भक्तिकाल का आरम्भिक परिचय ही कुछ इस भंगिमा में दिया - 'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराए जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे।..... अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था'

आचार्य शुक्ल का इतिहास हिन्दी साहित्य के सबसे लोकप्रिय इतिहासों में एक है और आपने देखा होगा कि पाठ्यपुस्तकों में दिया गया इतिहास भी अधिकांशतः इसी पर आधारित होता है। ऊपर दिए उद्धरण से कुछ प्रश्न पैदा होते हैं -

1. क्या हिन्दी साहित्य सिर्फ हिन्दू जाति की सम्पत्ति है? और वह भी एक हतदर्प-पराजित हिन्दू जाति की!

2. क्या इस्लाम ने भारत आकर सचमुच किसी बड़ी मानव सभ्यता का नाश कर दिया?
3. उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन क्या सिर्फ इसलिए अस्तित्व में आया क्योंकि हिन्दू इस्लाम से डरे और हारे हुए थे?

सूफियों के सम्बन्ध में भी आचार्य शुक्ल का मंतव्य ध्यान देने योग्य है - इतिहास और जनश्रुति में इस बात का पता लगता है कि सूफी फकीरों और पीरों के द्वारा इस्लाम को जनप्रिय बनाने का उद्योग भारत में बहुत दिनों तक चलता रहा।

यहाँ फिर कुछ सवाल उठते हैं -

1. क्या सूफियों को भारत में इस्लाम की स्थापना के षडयंत्र के लिए राजनीतिक रूप से भेजा गया था?
2. उद्योग शब्द का क्या तात्पर्य है? क्या उन प्रेम दीवानों का इस तरह के उद्योग में विश्वास था?
3. और फिर खुद इन सूफियों की इस्लाम में क्या स्थिति थी और इस्लाम के पैरोकार इन्हें किस नजर से देखते थे?

हजारी प्रसाद जी की किताबों में सबसे पहली बात यह दर्ज है कि वे साफ़ तौर पर हिन्दी साहित्य को जनभाषाओं का साहित्य मानते हैं और यह भी कहना नहीं भूलते कि इसी साहित्य ने इन जनभाषाओं को राजकीय सम्मान भी दिलाया। हजारीप्रसाद जी के इस जन का विस्तार हमारे समय की जनवादी अवधारणा तक दिखाई पड़ता है। दूसरी खास बात को उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' के पहले ही पृष्ठ पर लिखा है - दुर्भाग्यवश, हिन्दी साहित्य के अध्ययन और लोक-चक्षु-गोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है, वे भी हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति के साथ ही अधिक बतलाते हैं और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौका देते हैं - एक यह कि हिन्दी साहित्य एक हतदुर्ष-पराजित जाति की सम्पत्ति है और इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान-पतन के साथ सम्बद्ध है और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो तो भी वह एक निरन्तर पतनशील जाति की चिन्ताओं का मूर्त प्रतीक है। 7 इसी क्रम में हजारीप्रसाद जी ने आगे लिखा कि मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है। सूफियों पर उनका यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है - निर्गुण भाव के शास्त्र-निरपेक्ष साधकों की भाँति इन कवियों में अधिकतर शास्त्र-ज्ञान-विरहित थे, पर निस्संदेह पहुँचे हुए प्रेमी थे। इन्होंने प्रेम के जिस एकांतिक रूप का चित्रण किया है, वह भारतीय साहित्य में नई चीज़ है। प्रेम की इस पीर के आगे ये लोकाचार की कुछ परवाह नहीं करते थे। भारतीय काव्य-साधना में प्रेम की ऐसी उत्कट तन्मयता दुर्लभ थी।

गौरतलब है हजारीप्रसाद जी प्रेम की एकांतिक साधना का जिक्र कर रहे हैं जो आचार्य शुक्ल के इस्लाम को फैलाने के उद्योग से बिल्कुल अलग ज़मीन पर कही गई बात है। वास्तविकता यही है कि सूफियों ने भारतीय संस्कृति में एक नया अध्याय जोड़ा, जिसका विस्तार साहित्य से लेकर अध्यात्म और संगीत के क्षेत्र तक मिलता है। हिन्दी साहित्य की भूमिका में हजारीप्रसाद जी ने दो-टुक शब्दों में लिखा कि यह कहना तो और भी उपाहास्पद है कि जब मुसलमान हिन्दू मंदिरों को नष्ट करने लगे तो हताश होकर हिन्दू लोग भजन-भाव में जुट गए। उन्होंने उत्तर में भक्ति आन्दोलन के उद्भव को दक्षिण के आलवार भक्तों से जोड़ा, जिनमें कई अछूत जातियों के भक्त थे और इस बारे में यह कहा कि आलवारों का भक्तिमतवाद भी जनसाधारण की चीज़ था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसे हजारीप्रसाद जी ने महत्व दिया। उनके लिए जनसाधारण का भी असाधारण महत्व था। मेरा आग्रह है कि आचार्य शुक्ल के 'लोक' के बरअक्स हजारीप्रसाद जी के 'जन' को रखकर अवश्य देखा जाए। यह एक नई साहित्यालोचना और इतिहास दृष्टि है। इसमें विशुद्ध ऐतिहासिक तर्क भी हैं और अपने समकाल और भविष्य को भाँपने की अद्भुत योग्यता भी। हजारीप्रसाद जी ने भारत में इस्लाम के आगमन को सात्मीकरण से जोड़कर देखा। मुसलमान इस धरती पर आए पहले आक्रमणकारी नहीं थे। उनसे पहले आर्य, यवन, हूण और शक यहाँ आ चुके थे। भारत के अन्दर भी जैन और बौद्ध जैसे धर्मों का बोलबाला था। दक्षिण, उत्तर और सुदूर उत्तरपूर्व की संस्कृतियों और जीवन शैली में भिन्नता थी। इस्लाम के आगमन ने इसमें एक नया पन्ना जोड़ा। टकराव होना ही था और हुआ भी लेकिन बाद में यह टकराव सात्मीकरण में बदलता गया। दो संस्कृतियों के मिलन का यह सबसे अच्छा और तर्कसंगत सिद्धान्त है। हमें जानना होगा कि कबीर से पहले भी बारहवीं शताब्दी में अब्दुरहमान नाम का जुलाहा कवि हुआ है, उसके रचनाओं का संकलन और संपादन 'संदेश-रासक' के रूप में हजारीप्रसाद जी ने अपने शिष्य विश्वनाथ त्रिपाठी के साथ मिलकर किया है। हजारीप्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य के ऊपर से हिन्दू का बिल्ला उतार उसके स्रोतों को सैद्धान्तिक रूप से बौद्ध सिद्धों और जैन मुनियों की वाणी में खोजा। इस तरह वे राजाओं की गाथाओं में न जाकर जनमानस का हृदय टटोल रहे थे। हिन्दी आलोचना के विकासक्रम यह एक क्रांति है, जिसमें आचार्य द्विवेदी के बुनियादी आलोचना सिद्धान्त भी स्पष्ट दिखाई देते हैं।

1. आचार्य द्विवेदी पहले आलोचक हैं जिन्होंने भक्ति आंदोलन की तुलना हिन्दी के समकालीन प्रगति आन्दोलन से की। आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष में यह एक बड़ा कदम था। वे लिखते हैं - प्रगतिशील आंदोलन महान उद्देश्य से चालित है। इसमें साम्प्रदायिक भाव का प्रवेश नहीं हुआ तो इसकी सम्भावनाएं अत्यधिक हैं। आचार्य के इस कथन से सहज ही पता लगता है कि चाहे भक्ति आंदोलन चाहे प्रगतिवाद, दोनों में उन्हें डर साम्प्रदायिकता के प्रवेश का था। अपनी सैद्धान्तिक भूमि पर साम्प्रदायिकता के संकट का अनुभव करने वाले भी वे पहले आलोचक हैं।

2. तुलसीदास के सन्दर्भ समन्वयवाद पद हिंदी आलोचना में बहुत चल पड़ा था। आचार्य द्विवेदी ने पहली बार इसकी सीमाओं को जाना। उन्होंने खुद को अनेकान्तवादी घोषित करते हुए लिखा - कई अतिवादताओं बचकर कोई मध्यममार्ग निकालने को सन्तुलित दृष्टिकोण नहीं कहते।
3. आचार्य द्विवेदी ने कथालोचना भी की और प्रेमचन्द उनकी मानवतावादी और प्रगतिशील दृष्टि के कारण महान कथाकार के रूप में चिन्हित किया।

20.7 डॉ नगेन्द्र

डॉ. नगेन्द्र आधुनिक युग के वे आलोचक हैं, जिन्होंने भारतीय परम्परा से रससिद्धान्त की नई व्याख्या करने का प्रयास किया साथ पाश्चात्य काव्यशास्त्र का एक समूचा साहित्य हिंदी में उपलब्ध कराया।

डॉ. नगेन्द्र आलोचना के पहले सफल और महत्वपूर्ण प्रयास छायावादी कवियों पर लिखते हुए किए। उनकी पुस्तक सुमित्रानन्दन पंत आचार्य शुक्ल के जीवनकाल में आ गई थी। आचार्य शुक्ल स्वयं इस पुस्तक की प्रशंसा करते हुए इसे छायावाद पर पहली ठीक-ठिकाने की पुस्तक बताया था। डॉ. नगेन्द्र द्वारा छायावाद की सूक्तिपरक परिभाषा आज भी विद्यार्थियों को अपने ओर खींचती है - छायावाद 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है'। डॉ नगेन्द्र ने जिस प्रकार पंत जी की आलोचना की, उसे प्रभाववादी कहकर खारिज नहीं किया जा सकता था। उनके प्रमुख सिद्धान्तों को निम्नवत देखा जा सकता है -

1. डॉ. नगेन्द्र छायावादी काव्य के सैद्धान्तिक आलोचक के रूप में स्थापित हुए पर उनका अधिकांश कार्य सुमित्रानन्दन पंत पर केन्द्रित रहा। उन्होंने छायावाद में सौन्दर्यनिरूपण और रहस्यभावना की तथ्यपरक समीक्षा की। छायावाद की उपरोक्त सूक्तिपरक व्याख्या भी दी।
2. डॉ. नगेन्द्र अपने समय में चल रहे प्रगतिवादी आन्दोलन से सैद्धान्तिक तारतम्य नहीं बिठा पाए। अपने समय के प्रगतिवादी कवियों पर विचार करते हुए लिखा कि एक और आक्षेप जो प्रगतिवाद के मूल सिद्धान्तों पर किया जा सकता है यह है कि इसका दृष्टिकोण मूलतः वैज्ञानिक होने के कारण बौद्धिक एवं आलोचनात्मक है। अतएव स्वभाव से ही उनमें वह तन्मयता या आत्मविसर्जन नहीं है जो काव्य के लिए अनिवार्य है। नगेन्द्र के इस आक्षेप की खुद भी अपनी कई सीमाएं हैं जिन पर अगली इकाई में लिखा जाएगा।
3. डॉ. नगेन्द्र की समूची साहित्य साधना प्रतिफल आचार्य विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार उनका ग्रंथ **रस सिद्धान्त** है। स्वयं नगेन्द्र इसे अपनी साहित्य-साधना का उत्तमांश माना है। अब तक आचार्य शुक्ल की रस मीमांसा ही प्रचलन में थी और कविता के बदलते शिल्प

में इसकी अधिक आवश्यकता भी नहीं जान पड़ती थी। नगेन्द्र ने शुक्ल जी की मीमांसा में कुछ नया और स्वतंत्र जोड़ने की अपेक्षा की होगी, तभी यह ग्रंथ प्रकाश में आया।

4. रससिद्धान्त के सन्दर्भ में बड़े प्रयोगवादी कवि अज्ञेय का मत था कि रस जिस व्यवस्था पर आधारित है वह आस्तिकता है। आज के जीवन में वह आस्तिकता नहीं है इसलिए आज के काव्य को रस नाम देना उचित नहीं है। वह अनुभूति मात्र है। लेकिन डॉ. नगेन्द्र ने अज्ञेय का प्रतिवाद करते हुए रस को आस्तिकता पर आधारित न मानकर मानवसंवेदना पर आधारित माना और इस तरह नए युग की कविता में उसे फिर प्रासंगिक बना दिया।
5. पाश्चात्य काव्यशास्त्र में डॉ. नगेन्द्र ने प्लेटो, अरस्तू और लांजाइनस का वृहद विवेचन हिंदी में सम्भव किया और कराया भी। हिंदी की ऐतिहासिक आलोचना अब पश्चिमी मान्यताओं के बरअक्स देखी और पढ़ी जा सकती थी।

20.8 डॉ. देवराज

शुक्लोत्तर काल में कुछ ऐसे आलोचक हुए जिन्होंने पुरातन व्यवहासिक समीक्षा लिखी किंतु सैद्धान्तिक रूप वे किसी वाद अथवा आंदोलन से नहीं बंधे। डॉ. देवराज उनमें प्रमुख हैं। अपने लेखक आरम्भिक काल में ही उन्होंने **छायावाद का पतन** जैसी किताब लिखी वस्तुतः देवराज दर्शन के गम्भीर विद्यार्थी रहे इसलिए उनकी काव्यालोचना दृष्टि काफी निमर्म और एकांगी रही। इस पुस्तक ने अपनी ओर ध्यान तो खींचा लेकिन छायावाद को या उसके प्रतिवाद को समझा पाने यह अपनी भूमिका नहीं बना पायी। डॉ. देवराज के अनुसार छायावाद के पतन कारण ठीक वही थे जो उसके उत्थान के।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद भी डॉ. देवराज के प्रतिरोध की सीमा में आया। प्रगतिवाद की समीक्षा करते वे बार-बार समाज और व्यक्ति की गुत्थियों में उलझते रहे और कोई नई दृष्टि प्रगतिवादी आलोचना को नहीं दे पाए किन्तु शुक्लोत्तर समीक्षा में वे एक महत्वपूर्ण नाम हैं।

बोध प्रश्न -

1. निम्न में कौन शुक्लोत्तर-युग का आलोचक है -

(अ) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

(ब) बालकृष्ण भट्ट

(स) जयशंकर प्रसाद

(द) देवराज

2. पं. नंद दुलारे वाजपेयी का जन्म का जन्म कब हुआ -

(अ) 1960

(ब) 1906

(स) 1884

(द) 1886

3. डॉ. नगेन्द्र ने रससूत्र की व्याख्या की-

(अ) सत्य

(ब) असत्य

4. हिंदी का आदिकाल किसकी पुस्तक है -

(अ) रामचंद्र शुक्ल

(ब) शांतिप्रिय द्विवेदी

(स) हजारी प्रसाद द्विवेदी

(द) डॉ. नगेन्द्र

5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी मानवतावादी दृष्टिकोण के लेखक थे -

(अ) सत्य

(ब) असत्य

6. 'छायावाद का पतन' नामक पुस्तक डॉ. नगेन्द्र ने लिखी -

(अ) हाँ

(ब) नहीं

7. सुमित्रानन्दन पंत पर डॉ. नगेन्द्र ने किताब लिखी -

(अ) हाँ

(ब) नहीं

8. निम्न से किस पश्चिमी विचारक का प्रभाव आचार्य शुक्ल पर पड़ा-

(अ) नीत्शे

(ब) सात्र

(स) हैकल

(द) मार्क्स

9. रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी में रहस्यवादी काव्य का आलोचकीय समर्थन किया-

(अ) सत्य

(ब) असत्य

निम्न विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल का व्यक्तित्व।

(2) लोकमंगल की अवधारणा।

(3) डॉ० नगेन्द्र के साहित्यिक व्यक्तित्व पर टिप्पणी लिखिए।

(4) डॉ० नंददुलारे वाजपेयी के कृतित्व पर एक टिप्पणी लिखिए।

(5) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के आलोचना सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

20.9 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं की हिन्दी आलोचना कभी आचार्य शुक्ल से संवाद तो कभी प्रतिवाद करते हुए आगे बढ़ी। पं. नंददुलारे वाजपेयी ने शुक्लजी से सीखा भी और कुछ जगहों पर उनका खंडन भी किया। इसी प्रकार आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी द्वारा किए साहित्येतिहास में कई खामियों को सामने लाते हुए उन पर विस्तार से कार्य किया। उन्होंने इस क्रम में तीन महत्वपूर्ण किताबें भी लिखीं - हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी का आदिकाल और कबीरा। आचार्य शुक्ल के पश्चात हजारीप्रसाद जी ही हुए जिन्हें आचार्य की पदवी से याद किया जाता है। डॉ. नगेन्द्र हिंदी के नए अकादमिक जगत के प्रवक्ता थे। उस जगत के जो विभिन्न विश्वविद्यालयों में फल-फूल रहा था और उनके आचार्य गण नगेन्द्र की तर्ज पर खुद को आलोचक कहाने लगे थे, जबकि

सच यह था कि इस अकादमिक मरुथल में आलोचक सिर्फ नगेन्द्र ही थे और रहे। नगेन्द्र की तरह डॉ. देवराज भी आलोचना के क्षेत्र में आए। उन्होंने कुछ सैद्धान्तिक कार्य करने का प्रयास भी किया किन्तु अधिकांशतः वे दर्शन के क्षेत्र में ही कार्य करते रहे।

20.9 शब्दावली

शुक्लोत्तर	-	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के बाद
देहावसान	-	मृत्यु
विज्ञ	-	जानकार, विद्वान
सैद्धान्तिक	-	सिद्धान्त संबंधी
कथालोचना	-	कहानी, उपन्यास आदि की समालोचना

20.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देवराज
2. 1906
3. सत्य
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. सत्य
6. नहीं
7. हाँ
8. हैकल
9. असत्य

20.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

हिंदी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल

हिन्दी आलोचना- विश्वनाथ त्रिपाठी

हिन्दी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ

हिन्दी साहित्य कोश-भाग दो

रामचंद्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध - डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र/विनोद तिवारी

हिन्दी आलोचना के बीजशब्द - बच्चन सिंह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना का अर्थ: अर्थ की आलोचना- रामस्वरूप चतुर्वेदी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास की रचना-प्रक्रिया- समीक्षा ठाकुर

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का गद्य साहित्य- अशोक सिंह

इतिहास और आलोचना- नामवर सिंह

हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली - डॉ. अमरनाथ

आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना- रामविलास शर्मा

हिन्दी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल

आचार्य रामचंद्र शुक्ल: आलोचना के नए मानदंड- भवदेव पांडेय

हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी- निर्मला जैन

20.12 निबंधात्मक प्रश्न

- (1) शुक्लोत्तर आलोचना परिदृश्य पर एक विस्तृत निबंध लिखिए।
- (2) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी आलोचनात्मक साहित्य पर उनके महत्व पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

इकाई 21 प्रगतिशील आलोचना एवं रामविलास शर्मा

- 21.1 प्रस्तावना
- 21.2 उद्देश्य
- 21.3 प्रगति का अर्थ और मार्क्सवाद
- 21.4 हिंदी में प्रगतिशील आंदोलन का उदय एवं विकास
- 21.5 डॉ. रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व
- 21.6 डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना सिद्धान्त
- 21.7 सारांश
- 21.8 शब्दावली
- 21.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 21.10 सहायक पाठ्य सामग्री
- 21.11 निबंधात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई हिन्दी स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम के रूप में सम्मिलित है। इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने शुक्ल एवं शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना का विस्तृत अध्ययन किया है।

प्रस्तुत इकाई में आप प्रगतिशील आंदोलन, प्रगतिवादी चेतना और प्रगतिशील हिन्दी आलोचना के संदर्भ में डॉ० रामविलास शर्मा की आलोचना दृष्टि का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप प्रगतिशील हिन्दी आलोचना एवं डॉ० रामविलास शर्मा के आलोचकीय महत्व को जान सकेंगे।

21.2 उद्देश्य

प्रगतिशील आलोचना एवं डॉ. रामविलास शर्मा शीर्षक इस इकाई के सम्यक अध्ययन के उपरान्त आप बता सकेंगे कि

साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रगति का क्या अर्थ है।

प्रगतिशील आलोचना क्या है।

प्रगतिशील आंदोलन की पृष्ठभूमि में स्थित मार्क्सवादी सिद्धान्त क्या है।

हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी साहित्य सिद्धान्तों की भूमिका और मान्यता है।

डॉ. रामविलास शर्मा का आलोचना साहित्य में क्या व्यक्तित्व है।

डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना सिद्धान्त क्या हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपने समय के साहित्य पर क्या प्रभाव छोड़े।

21.3 प्रगति का अर्थ और मार्क्सवाद

प्रगति शब्द का प्रयोग आगे बढ़ने के रूप में आम है और यही शायद इसका सबसे सही अर्थ भी है। आगे बढ़ना ! पुराने मनुष्यविरोधी रीति-रिवाजों को तज कर आगे बढ़ना। शोषण की व्यवस्थाओं को तोड़ कर आगे बढ़ना। अकेले मनुष्य के लिए नहीं, समूची मानवता के लिए आगे बढ़ना। यह एक सामान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य ने अपनी अब तक की विकासयात्रा विराट सामूहिक प्रयत्नों द्वारा अर्जित की है। चलना और चलते रहना - यह प्रगति का एक सामान्य अर्थ हुआ। अब प्रश्न यह उठता है कि किस ओर चलना। हम अंधेरे नहीं चल सकते, हमें प्रकाश की आवश्यकता होती है। हम बिना

दिशा के नहीं चल सकते, हमें एक दिशा की आवश्यकता होती है। यह प्रकाश और दिशा हमें कुछ मानवीय सिद्धान्तों से मिलते हैं। प्रगतिवादियों को यह मार्क्सवाद से मिला, जिसे उन्होंने साहित्य की और साहित्यालोचन की दिशा के रूप में स्वीकार किया। हिंदी लगभग पूरा प्रगतिशील आंदोलन मार्क्सवाद से संचालित रहा है और बीज भगतसिंह की शहादत के समय ही पड़ गए थे, जो एक निश्चित वैचारिक सरोकर के लिए फांसी चढ़े। प्रगतिवादी मानते रहे कि भारतीय समाज की मुक्ति मार्क्सवाद की राह पर ही है। इनमें राहुल सांकृत्यायन जैसे व्यक्ति भी शामिल थे जो स्वामी सहजानन्द के साथ किसान आंदोलन से जुड़े रहे साथ नागार्जुन जैसे जनकवि भी। कई-कई प्रगतिबोध वाले लेखकों, पत्रकारों, रंगकर्मियों, राजनीतिकर्मियों ने मिलकर हिंदी में प्रगति का एक नया अध्याय जोड़ा जो आज सबसे अधिक प्रभावशाली है। विचारधारा के अनुसार प्रगतिशील लेखक-कवि-आलोचक अधिकांशतः मार्क्सवादी हैं।

अब प्रश्न उठता है कि साहित्य में मार्क्सवाद या मार्क्सवादी आलोचना क्या है। इसके कुछ सिद्धान्त या विचारबिंदु हैं, जिन्हें इस प्रकार क्रम दिया जा सकता है

1. मार्क्सवाद ने बार पहली समाज को किसी आंतरिक अवयव संरचना के रूप में प्रस्तुत किया। इसमें उत्पादन-शक्ति, उत्पादन के सम्बन्ध से लेकर राज्य, राजनीति, विधि, नश्वरता, दर्शन, विज्ञान, कला, सभी सम्मिलित थे।
2. मार्क्सवादी आलोचना की पहली अवधारणा यह है कि एक कवि के चित्त और वस्तुओं के प्रति उसकी वास्तविक दृष्टि के बीच द्विधात्मक संघर्ष मौजूद रहता है।
3. सोवियत रूस में क्रांति के बाद मार्क्सवादी अवधारणाओं का अतिरेक साहित्य पर देखा गया जब लेनिन ने घोषणा की कि साहित्य को हर स्थिति में पार्टी का साहित्य हो। उधर मार्क्स के संगी एंगेल्स लेनिन से काफी पहले 1885 में ही स्पष्ट कर कए थे कि लेखक के लिए ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है और शायद यही कारण था कि वे शेक्सपीयर को शीलर से और बालजाक को जोला बड़ा कलाकार मानते थे।
4. मार्क्सवादी आलोचना का व्यवस्थित सिद्धान्त पहली बार 1932 में प्रस्तुत हुआ जिसे 'समाजवादी वास्तववाद' की संज्ञा प्रदान की जाती है। लेखक का काम इस सिद्धान्त के अनुसार यथार्थ का पुनरुत्पादन करना है।
5. मार्क्सवादी अथवा प्रगतिशील आलोचना 'वस्तु आधारित' आलोचना है। यह वस्तु और रूप को अलग अलग तत्व मानती है तथा वस्तु को मूल सामाजिक तत्व मानती है, जिसका निरूपण लेखक करता है।
6. मार्क्सवादी आलोचना विचारधारा को महत्व देती है, कह सकते हैं कि ये एक कट्टर सैद्धान्तिक आलोचना है। मार्क्सवादी आलोचना के अनुसार विचार धारा के निम्न 6 प्रमुख बिन्दु हैं -

- विचारधारा का पदार्थपरक अस्तित्व होता है। एंगेल्स ने आडियलोजी को यथार्थपरक सामाजिक नातेदारी के विचार में होने वाले प्रतिबिम्बन को साहित्य माना।
- यह प्रतिबिम्बन दरअसल पुनरुत्पादन है जो लेखक करता है और सामाजिक प्रकार्यों में अपनी भागीदारी देता है।
- मार्क्सवादी आलोचना सामाजिक यथार्थ पर दृष्टि रखती है। वह सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक घटनाओं को समकाल में घटित होते देखती और साहित्य में उसके सूत्र खोजती है।
- विचारधारा हमेशा जनता केन्द्रित होती है। आम जनता के दुखदर्द और वंचनाएं विचार धारा के केन्द्र में होते हैं।
- विचारधारा शोषणमुक्त समाज का स्वप्न देखती है। इस दिशा में वह समाज को बदलने वाली रचनात्मकता को प्रोत्साहित करती है।
- पूंजीवाद और साम्राज्यवाद को मार्क्सवादी आलोचना में आम जन का सबसे बड़ा शत्रु माना जाता है।

21.4 हिंदी में प्रगतिशील आंदोलन का उदय एवं विकास

हिंदी में प्रगतिशील आंदोलन से पूर्व जानना होगा कि पश्चिम में यह कब और किस रूप में आया क्योंकि पश्चिमी प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन की शाखा के रूप में ही हिन्दुस्तान में भी प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। 1935 में ई.एम. फास्टर की अध्यक्षता में पेरिस में प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ।

1936 में सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनन्द के संयुक्त प्रयासों से लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का पहला सम्मेलन हुआ। इसलिए हिंदी में प्रगतिशीलता का उद्भव इसी वर्ष से मान लिया गया है। हालांकि 1930 के आसपास तक हिंदी यह आन्दोलन लेखकों को प्रेरित कर रहा था। प्रेमचन्द स्वयं इस विचारधारा बहुत प्रेरित रहे। प्रथम अधिवेशन के सभापति के रूप दिए गए वक्तव्य में उन्होंने कहा कि भी कि प्रगतिशील नाम गलत है, क्योंकि कलाकार या लेखक स्वभाव से ही प्रगतिशील होता है। नाम को लेकर प्रेमचन्द ने जो कहा हो पर उसके पीछे समूची विचार परम्परा से वे अन्त तक आड़ोलित थे और रहे।

प्रगतिशीलता के इस विचार को आलोचना में प्रविष्ट होना था। आचार्य शुक्ल और उनके बाद आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी वैचारिक रूप से पूर्णतः परिपक्व थे और अपने दृष्टिकोण में काफी साफ भी। भारतीय परम्पराओं के साथ-साथ पाश्चात्य दर्शन को भी निकट से देख रहे थे। उनके समय में

आलोचना में सिद्धान्त खोजने-रचने की विषयवस्तु होते थे, किन्तु प्रगति के युग में पहले ही कुछ बने बनाए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक ढांचे थे। आलोचना के लिए यह एक उलझन भरा समय रहा होगा जब उसे अपनी निकट परम्परा भी देखनी होती होगी और नए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को भी सिद्ध करना होगा। प्रगतिवाद की विचारधारा पूरी तरह मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित है। वह आधुनिक विचारधारा है किन्तु ऐतिहासिक विश्लेषण में अतीत के साहित्य का भी तथ्यपूर्ण अध्ययन करती है। मार्क्सवादी विचारक-आलोचक शिवदान सिंह चौहान का कथन है कि जहां यह सत्य है कि बाह्य परिस्थितियों से साहित्य अनेक स्वस्थ और अस्वस्थ प्रभाव ग्रहण करता है वहां यह भी उतना ही सत्य है कि ये प्रभाव साहित्य की ऐतिहासिक परम्पराओं के माध्यम से जीवन के अगणित सम्बन्धों को ग्रहण करके ही व्यक्त होते हैं इस प्रकार एक ओर वे साहित्य की परम्परा बदलते हैं तो दूसरी ओर साहित्य के इतिहास की तारतम्यता और सम्बद्धता को पुष्ट करते हैं।

प्रगतिशील आलोचना ने अतीत के साहित्य को कितनी अर्थवत्ता के साथ ग्रहण किया है इसके अनेक उदाहरण हैं। प्रगतिशीलों से भक्त कवियों, संतवाणियों आदि को खासा महत्व दिया है। वे कबीर, जायसी, तुलसी को परम्परा का ज़रूरी कवि मानते हैं।

21.5 डॉ. रामविलास शर्मा का व्यक्तित्व

इसी उलझे हुए समय में डॉ. रामविलास शर्मा आलोचना के क्षितिज पर आए। इनका जन्म 1912 ई में हुआ। अंग्रेजी के विद्यार्थी रहे। लम्बे समय तक निराला का साथ मिला। कन्हैयालाल मुंशी विद्यापीठ में अंग्रेजी के ही अध्यापक हुए। कुछ समय आगरा के ही बलवंत राजपूत कालेज में अंग्रेजी पढ़ाई। रामविलास जी के पूर्व हमारे दोनों बड़े आचार्य आलोचक संस्कृत की परम्परा से आए थे, किन्तु रामविलास जी अंग्रेजी से। वे अंग्रेजी पढ़े और अंग्रेजी पढ़ानेवाले आलोचक थे। पश्चिमी विचारकों और विचार सरणियों के बारे में उनकी जानकारी अधिक निकट की थी। लखनऊ में रहते हुए उन्हें निराला का साथ मिला जो बाद में और गहरा होता गया। निराला के साथ उनकी आदरपूर्ण मैत्री ने रामविलास के व्यक्तित्व में कई आयाम जोड़े। छायावाद के बारे में उनकी समझ इसी साथ से साफ़ हुई। साथ यह भी कहना होगा कि निराला की समझ पर भी मार्क्सवादी रामविलास शर्मा का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा और छायावाद की सीमाओं के पार उन्होंने भारतीय जनता की वंचनाओं और पीड़ाओं के जो मार्मिक चित्र खींचे वैसा कोई अन्य छायावादी नहीं कर पाया। डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी के प्रखरतम आलोचकों में हैं, जिन्होंने न सिर्फ़ प्रगतिशील आलोचना बल्कि भाषा और समाज के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम किया है।

तीन भागों में निराला की साहित्य साधना, प्रेमचन्द और उनका युग, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, प्रगति और परम्परा, भाषा, साहित्य और संस्कृति, भाषा और समाज आदि डॉ. शर्मा की प्रमुख कृतियां हैं। मृत्यु से पूर्व वे भारत की आर्य संस्कृति पर कुछ कार्य कर रहे थे जो कुछ टुकड़ों में प्रकाशित हुआ है। कुछ

मार्क्सवादी आलोचकों ने इसी कार्य के कारण डॉ. शर्मा पर विचारधारा से विचलन का आक्षेप लगाया।

21.5 डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना सिद्धान्त

डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना सम्बन्धी सिद्धान्तों अथवा बिन्दुओं को निम्नवत सूचीबद्ध किया जा सकता है -

1. डॉ. रामविलास शर्मा घोषित मार्क्सवादी हैं, अतः उनकी आलोचना पर मार्क्सवादी विचारधारा प्रभाव होना स्वाभाविक है।
2. मार्क्सवादी होने के बावजूद डॉ. शर्मा ने रससिद्धान्त पर अपनी मान्यता स्पष्ट की है। उन्होंने रस की अलौकिकता में काव्य को उलझाकर उसके सामाजिक कर्तव्य की ओर से आंखें फेरने वाली मनोवृत्ति को अनावृत किया है। साथ ही रस विवेचन में सब कुछ आचार्यों के ही हवाले कर देने की परम्परा से हटकर पाठकों को अपनी तरह से रसास्वाद लेने का अधिकार दिया है।
3. डॉ. रामविलास शर्मा ने साहित्य सामाजिक यथार्थ के चित्रण को सर्वोपरि माना है। इसी कारण उनका झुकाव कविता निराला और बाद में केदारनाथ अग्रवाल तथा कथासाहित्य में प्रेमचंद की ओर रहा।
4. डॉ. शर्मा के लिए साहित्य में द्वंद्वत्मक भौतिकवाद एक कसौटी है। उनके अनुसार पुरानी जर्जर अमानवीय स्थितियों और सत्ता केन्द्रों से संघर्ष करते हुए शोषित तबके का उदय होता है, जिसे साहित्य में चित्रित किया जाना चाहिए।
5. डॉ. शर्मा उच्च आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अर्थों का आभास देने वाली किंतु समाज में अमानवीय स्थितियों को बनाए रखने वाली छद्म शक्तियों की पहचान अपनी सैद्धान्तिक आलोचना में बड़ी गहराई से करते हैं।
6. डॉ. शर्मा परम्पराओं में सभी कुछ का परित्याग कर देने के पक्षधर नहीं हैं। उन्होंने साहित्यःस्थायी मूल्य और मूल्यांकन में लिखा है कि यह आवश्यक नहीं कि शोषक वर्ग ने जिन नैतिक अथवा कलात्मक मूल्यों को निर्माण किया है वे सभी शोषण मुक्त वर्ग के लिए अनुपयोगी हों.....प्राचीन साहित्य के मूल्यांकन में हमें मार्क्सवाद से यह सहायता मिलती है कि हम उसकी विषयवस्तु और कलात्मक सौन्दर्य को ऐतिहासिक दृष्टि से देखकर उनका उचित मूल्यांकन कर सकते हैं।
7. डॉ. शर्मा की आलोचना की विशेषता है कि जहां एक ओर वे आधुनिक समाज के निर्माण के स्वप्न को और उसकी जनपक्षधरता को स्पष्ट करते वहीं इस स्वप्न को हिंदी की जातीय परम्परा से जोड़ते भी हैं।

8. डॉ. शर्मा शायद पहले आलोचक हैं जिन्होंने अंग्रेजों द्वारा काउ बेल्ट कही जाने हिंदी पढ़ी के लेखकों का गरिमा और गौरवपूर्ण संधान किया फिर चाहे वे प्रेमचन्द हों या निराला।
9. डॉ. शर्मा के हिंदी आलोचना में आगमन तक हिंदी साहित्य के आदि और मध्यकाल की गुत्थियां सुलझा लीं गई थी इसलिए उन्होंने अपने लेखन की शुरूआत में इन पर कुछ नहीं लिखा। वे आधुनिक युग की शिनाख्त के आलोचक बने। बाद में वृद्धावस्था में उन्होंने कुछ ऐतिहासिक लेखन करने की कोशिश की जो विवादित रहा।
10. अब तक हमने आचार्य शुक्ल, आचार्य द्विवेदी, पं. नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. देवराज आदि की आलोचना से परिचय प्राप्त किया है और हम देख सकते हैं हिंदी में गद्य आलोचना कथालोचना एक तरह से उपेक्षित रही थी, वो भी तब जबकि प्रेमचन्द जैसा महान कथाकार परिदृश्य पर मौजूद था। डॉ. शर्मा ने यह काम बखूबी किया। प्रेमचन्द पर उनकी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' आज भी एक दस्तावेज है। गोदान को जब आलोचक कृषक जीवन के महाकाव्य में भटका रहे थे तब डॉ. शर्मा के मार्क्सवादी मन इस तथ्य को जाना कि गोदान भारत में शोषण के औजारों के बदलने की कथा है, भारत में पूंजीवाद के आगमन की कथा है। डॉ. शर्मा ने ही पहली बार हिंदी संसार को बताया कि प्रेमचन्द के पात्रों में हिंदू-मुस्लिम पात्रों की सामान्य आवाजाही है, जैसी कि वास्तविक समाज में। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी उल्लेख करते हैं कि प्रेमचन्द को डॉ. रामविलास शर्मा ने कबीर, तुलसी और भारतेन्दु की परम्परा से जोड़ा है। किसी आलोचक लिए यह एक बड़ा सैद्धान्तिक आयाम है।
11. कविता के क्षेत्र में डॉ. रामविलास शर्मा ने बहुत कार्य किया है। 1948 में उनकी पुस्तक 'निराला' प्रकाशित हुई थी। डॉ. शर्मा निराला के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने लिखा भी है कि अपने इस प्रिय कवि पर चारों ओर से घृणित आक्रमण न होते तो वे शायद हिंदी आलोचना के क्षेत्र में न उतरते। निराला छायावादी थे, डॉ. शर्मा अगली पीढ़ी के मार्क्सवादी लेकिन आम भारतीय जनता के मन और मर्म के स्तर कुछ था जो उन्हें जोड़ता था। आजादी के आसपास और बाद के निराला को देखिए तो प्रगतिवादी कवि हर कहीं नजर आयेगा।
12. निराला के बहाने डॉ. शर्मा हिंदी आलोचना के क्षेत्र में उतरे और सभी छायावादी कवियों का अध्ययन किया, जिनमें एक उनके प्रिय निराला भी थे। प्रिय और प्रशंसा जैसे पद यह भ्रम उत्पन्न करते हैं कि डॉ. शर्मा ने सर्वत्र निराला जयजयकार की होगी पर स्थिति बिल्कुल ऐसी नहीं है। नहीं भूलना चाहिए कि डॉ. शर्मा के भीतर का आलोचक मार्क्सवाद की सरणियों में अपना काम कर रहा है। उसके सामने घुटती-पिसती भारतीय जनता और उस जनता के लिए जो साहित्य लिखा जा रहा है वहीं उस युग का साहित्य है। छायावादियों में निराला को छोड़ बाकी कवि ऐसा नहीं कर पाए।

निराला पर बंगला रहस्यभावना और अध्यात्म का गहरा रंग था, जिसे डॉ. शर्मा बार-बार इंगित करते रहे। निराला के जटिल व्यक्तित्व में से डॉ. शर्मा ने उस महान कवि को निकाला और हमारे सामने रखा, लेकिन किसी श्रद्धा के लिए नहीं, अपने समय के शोषण और दुश्क्र को जानने के लिए। निराला उनके लिए प्रेम, सौन्दर्य और संघर्ष के कवि बने और उन्होंने निराला की कविताओं से सिद्ध करके दिखया कि निराला का सौन्दर्य ब्रह्मानन्द का सहचर है। डॉ. शर्मा कविता में आने वाली ध्वनियों के प्रति भी सचेत थे और उनके आधार पर कवि द्वारा बनाए लोक प्रवेश करते थे। यहां भी निराला की उनके अधिक सहायक हुए क्योंकि ध्वनियों और नाद का निराला से बड़ा कवि कोई नहीं। डॉ. शर्मा ने हिंदी में नई आ रही लम्बी कविताओं पर ध्यान एकाग्र किया, संयोग ही था कि इनमें से अधिकांश निराला की थीं।

13. डॉ. शर्मा मार्क्सवाद के अनुरूप ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता पर बल देते हैं और उन तथ्यों का विश्लेषण करते हैं जिनके कारण अतीत का साहित्य हमें भाता है।
14. डॉ. शर्मा ने साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र पर अपनी राय रखते हुए स्पष्ट किया है कि साहित्यिक सौन्दर्य विषय, भाव, विचार और व्यंजनाप्रणाली, इन सबके मिले-जुले रूप पर आधारित होता है।
15. साहित्य भाषा के विषय में डॉ. शर्मा का कथन है कि भाषा का आदर्श रूप वही है जो लोक-चेतना को वहन कर सके। उन्होंने व्यंग्य भी किया है कि जो अपने साज-सिंगार में व्यस्त रहेगा, वह औरों की बात क्या कहेगा? स्पष्ट है कि डॉ. शर्मा साहित्य की सर्वोपरि सामाजिक और उसके साथ सहज रूप से प्रस्फुटित होनेवाली भाषाशैली को साहित्यसौन्दर्य का स्रष्टा माना है।
16. डॉ. शर्मा मार्क्सवाद के अनुरूप शैली से अधिक विषयवस्तु को महत्व देते हैं। वे मानते हैं कि साहित्य का विषय सामाजिक हो, एकांतिक होने पर भी उसके गूढ़ सामाजिक आशय हों, जैसा निराला में है। साहित्य की जनजीवन से स्पष्ट सम्बद्धता हो। उनका कहना है कि कला में शक्ति केवल उसे मांजने से नहीं आती वरन् विषय की जीवन्तता से आती है। उन्होंने एक निबन्ध ही 'साहित्य में जनता का चित्रण' नाम से लिखा है, जिसमें स्पष्ट किया है कि यह समझना कि जनता के जीवन को निकट से देखने से कवि का भावजगत धुंधला हो जाएगा या उसके अन्तःस्थल की कोमल वृत्तियों का सर्वनाश हो जाएगा, एक प्रवंचना भर ही है।
17. डॉ. शर्मा ने बहुत सारा काम व्यावहारिक समीक्षा के रूप में किया है। प्रेमचन्द और उनका युग, प्रेचन्द, भारतेन्दु युग, निराला, रामचंद्र शुक्ल उनकी ऐसी स्वतंत्र पुस्तकें हैं। उन्होंने प्रसाद और वृंदावनलाल वर्मा की कृतियों पर समीक्षाएं लिखीं, जिनमें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा का अच्छा मेल मिलता है। डॉ. शर्मा ने शरतचंद्र, नजरुल इस्लाम, शैली, टैगोर, बलभद्र दीक्षित, भूषण, आई.ए. रिचर्ड्स के आलोचना

सिद्धान्त आदि निबन्ध भी लिखे, जिनसे उनकी प्रगतिशील आलोचकीय दृष्टि का पता चलता है।

बोध प्रश्न 1

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. प्रगतिवाद क्या है, संक्षेप में लिखिए।
2. प्रगति से क्या तात्पर्य है?
3. हिंदी साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन का आरम्भ कब और कैसे हुआ?
4. मार्क्सवाद में लेखक को उत्पादक किस प्रकार माना जाता है?
5. डॉ. रामविलास शर्मा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

बोध प्रश्न 2 सही विकल्प चुनिए

1. डॉ. रामविलास शर्मा का जन्म किस सन में हुआ?

अ. 1912

ब. 1920

स. 1918

द. 1909

2. निम्न में से कौन आलोचक रामविलास शर्मा का समकालीन तथा सहधर्मी आलोचक है?

अ. शिवदान सिंह चौहान

ब. डॉ. नगेन्द्र

स. रामचंद्र शुक्ल

द. हजारप्रसाद द्विवेदी

3. प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन का गठन कहाँ हुआ?

अ. रोम

ब. लंदन

स. पेरिस

द. न्यूयार्क

4. प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन का पहला अधिवेशन कब हुआ था?

अ. 1936

ब. 1935

स. 1940

द. 1941

5. प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन के पहले अधिवेशन की अध्यक्षता किसने की?

अ. ई.एम. फास्टर

ब. आई.ए. रिचर्ड्स

स. टी.एस. इलियट

द. इनमें से कोई नहीं

6. भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना कब हुई?

अ. 1934

ब. 1935

स. 1936

द. 1945

7. भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में कि अंग्रेजी लेखक की भूमिका थी?

अ. वी.एस. नायपाल

ब. नीरद चौधुरी

स. मुल्कराज आनन्द

द. के. आर. नारायण

8. भारत में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना में कि उर्दू लेखक की भूमिका थी?

अ. सआदत हसन मंटो

ब. सज्जाद जहीर

स. के आसिफ

द. कृष्ण चन्दर

9. प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन का सभापति कौन था?

अ. निराला

ब. रामविलास शर्मा

स. प्रेमचन्द

द. सुमित्रानन्दन पंत

बोध प्रश्न 3 निम्न कथनों में सत्य/असत्य का निर्धारण कीजिए

1. प्रगतिशील आलोचना राजनीतिक रूप से मार्क्सवाद से प्रेरित है ?
2. नागार्जुन प्रगतिशील कवि है ?
3. केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील कवि नहीं है?
4. प्रगतिशील आलोचना का विस्तार आज की आलोचना में है?

21.7 सारांश

हिंदी आलोचना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के बाद डॉ. रामविलास शर्मा सबसे आलोचक हैं जिन्हें उनकी सैद्धान्तिक-व्यावहारिक समीक्षा तथा विभिन्न विषयों पर लेखकीय प्रचुरता के कारण याद किया जाता है। वे अंग्रेजी के विद्वान थे और अध्यापक भी। वे पश्चिमी सिद्धान्तों को भी उनके मूल से जानते थे और भारतीय को भी। दो विश्वयुद्धों के बीच वे युवा हुए और उनका सम्पर्क मार्क्सवादी विचारधारा से हुआ। उन्हें प्रतीत हुआ कि भारत की जनता भी शोषण और अमानवीय जीवन-स्थितियों की उसी चक्की में पिस रही है, जिसे साम्राज्य और पूंजीवाद कहते हैं। यहां से उन्हें दिशा मिली। भारतेन्दु और महावीरप्रसाद द्विवेदी के युग में उन्होंने भारतीय नवजागरण देखा, जहां आम जनता आजादी और स्वाभिमान के लिए सचेत होती जा रही

थी और अपनी भाषा और साहित्य के लिए भी। हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि रामविलास जी वे आलोचक हैं जिन्होंने प्रगतिशील आलोचना के लिए भूमि तैयार की। उनकी इतिहासदृष्टि भी विलक्षण थी, जो कबीर, तुलसी, रहीम, रसखान तक एक पूरी परम्परा को समाहित करती है। उदाहरण के लिए निराला की लम्बी कविताएं 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' का उनका किया विश्लेषण देखा जा सकता है। रामविलास जी तैयार की हुई विचारभूमि पर उनके तुरत बाद कई आलोचकों ने सार्थक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना की। शिवदान सिंह चौहान तो उनके समकालीन ही रहे। फिर बच्चन सिंह, नामवर सिंह, मैनेजर पांडे आदि आज के बड़े आलोचक हैं। हालांकि जैसा कि पहले भी उल्लेख हुआ अपने अंतिम समय में डॉ. शर्मा आर्य संस्कृति की ओर कुछ कार्य करना चाहते थे जिसके कतिपय साम्प्रदायिक आशय भी रहे और उनके परवर्तियों का उनसे विरोध भी रहा। डॉ. शर्मा ने अस्तित्ववाद का जो आरोप मुक्तिबोध पर लगाया उसे डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान' में पूरी तरह ध्वस्त कर दिया। यह किसी आलोचक की सबसे बड़ी तार्किक हार कही जा सकती है। लेकिन अपने क्रोध में डॉ. रामविलास शर्मा अपने वक्रत के सबसे बड़े आलोचक कहे जाते हैं, जिन्होंने प्रचुर मात्रा में लेखन किया।

21.8 शब्दावली

विराट - विशाल, बड़ा

आडियोलोजी - विचारधारा

अनुपयोगी - जो उपयोगी न हो

ऐतिहासिक - इतिहास संबंधी

स्त्रष्टा - बनाने वाला सृजन करने वाला

21.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 2 के उत्तर

अ. 1912

अ. शिवदान सिंह चौहान

स. पेरिस

ब. 1935

अ. ई.एम. फास्टर

स. 1936

स. मुल्कराज आनन्द

ब. सज्जाद जहीर

स. प्रेमचन्द

बोध प्रश्न के 3 उत्तर

सत्य

सत्य

असत्य

सत्य

21.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. निराला की साहित्य साधना - भाग एक : रामविलास शर्मा
2. निराला की साहित्य साधना - भाग दो : रामविलास शर्मा
3. निराला की साहित्य साधना - भाग तीन : रामविलास शर्मा
4. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी - भाग एक: रामविलास शर्मा
5. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी - भाग दो: रामविलास शर्मा
6. भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी - भाग तीन: रामविलास शर्मा
7. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद - भाग एक: रामविलास शर्मा
8. भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद - भाग दो: रामविलास शर्मा
9. मार्क्स और पिछड़े हुए समाज -रामविलास शर्मा
10. भारत की भाषा समस्या -रामविलास शर्मा

11. भाषा और समाज -रामविलास शर्मा
12. आस्था और सौन्दर्य -रामविलास शर्मा
13. नई कविता और अस्तित्ववाद -रामविलास शर्मा
14. भारतीय साहित्य की भूमिका -रामविलास शर्मा
15. प्रेमचन्द और उनका युग -रामविलास शर्मा
16. आचार्य रातचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना -रामविलास शर्मा
17. भारतेन्दु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं-रामविलास शर्मा
18. भारतेन्दु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्पराएं -रामविलास शर्मा
19. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण-रामविलास शर्मा
20. ऐतिहासिक भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा -रामविलास शर्मा
21. पाश्चात्य दर्शन और सामाजिक अन्तर्विरोध-रामविलास शर्मा
22. परम्परा का मूल्यांकन-रामविलास शर्मा
23. निराला -रामविलास शर्मा
24. प्रेमचन्द-रामविलास शर्मा
25. हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल
26. हिंदी ओलोचना - विश्वनाथ त्रिपाठी
27. हिंदी समीक्षा: स्वरूप और संदर्भ - रामदरश मिश्र
28. हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी - निर्मला जैन
29. मार्क्सवादी, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय आलोचना- पांडेय शशिभूषण शीतांशु
30. हिंदी आलोचना: शिखरों का साक्षात्कार -रामचंद्र तिवारी

21.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रगति शब्द का आशय स्पष्ट करते हुए प्रगतिवाद प्रकाश डालिए तथा डॉ. रामविलास शर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय दीजिए।
2. हिन्दी आलोचना के प्रमुख मार्क्सवादी आलोचना सिद्धान्तों पर विस्तृत लेख लिखिए साथ ही डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष पर प्रकाश डालिए।
3. प्रगतिशील आंदोलन का विस्तृत परिचय देते हुए उसके विकास क्रम को स्पष्ट कीजिए।
4. डॉ० रामविलास का परिचय देते हुए उनकी आलोचात्मक विकास यात्रा पर निबंध लिखिए तथा प्रगतिशील हिन्दी आलोचना में डॉ० शर्मा का अवदान स्पष्ट कीजिए।

इकाई 22 - समकालीन हिन्दी आलोचना और नामवर सिंह

- 22.1 प्रस्तावना
- 22.2 उद्देश्य
- 22.3 समकालीन हिन्दी आलोचना
- 22.4 मार्क्सवादी आलोचना परम्परा
- 22.5 रचना और आलोचना के बदलते ढाँचे
- 22.6 डॉ. नामवर सिंह का व्यक्तित्व
- 22.7 डॉ. नामवर सिंह के आलोचना सिद्धान्त
- 22.8 सारांश
- 22.9 शब्दावली
- 22.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 22.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 22.12 निबंधात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई हिंदी स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित है। इस इकाई के अध्ययन से पूर्व की इकाईयों में आपने हिंदी आलोचना की संपूर्ण विचार एवं विकास यात्रा का ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में आप समकालीन हिंदी आलोचना के उद्भव एवं विकास को समझ सकेंगे।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप समकालीन हिंदी आलोचना दृष्टि तथा इसी के अंतर्गत डॉ० नामवर सिंह की आलोचनात्मक दृष्टि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

22.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेंगे कि -

- समकालीन हिंदी आलोचना क्या है?
- समकालीन हिंदी आलोचना की अलग अलग धाराएं क्या हैं?
- प्रमुख समकालीन आलोचक कौन हैं?
- समकालीन हिंदी आलोचना में डॉ० नामवर सिंह का व्यक्तित्व एवं महत्व क्या है?
- डॉ० नामवर सिंह के आलोचना सिद्धान्त क्या हैं?

22.3 समकालीन हिंदी आलोचना

- समकालीन एक ऐसा पद है, जिसमें कम से कम तीन पीढ़ियां समाहित हो सकती हैं। तीन उम्रों के आलोचक हिंदी आलोचना की समकालीनता भी कमोबेश ऐसी ही है। पहली पीढ़ी में नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, मैनेजर पांडेय, नंदकिशोर नवल, कमला प्रसाद और परमानंद श्रीवास्तव हैं। दूसरी पीढ़ी में पुरुषोत्तम अग्रवाल, सुधीश पचौरी, जीवन सिंह, वागीश शुक्ल, मदन सोनी आदि हैं। तीसरी पीढ़ी में प्रणय कृष्ण, कृष्णमोहन, आशुतोष कुमार, अनिल त्रिपाठी, ज्योतिष जोशी, पंकज चतुर्वेदी, व्योमेश शुक्ल आदि। इस पहली, दूसरी और तीसरी पीढ़ी में कुछ समकालीन कवि भी हैं, जिन्होंने अत्यन्त समर्थ आलोचना लिखी है जिनमें चन्द्रकान्त देवताल, अशोक वाजपेयी, विष्णु खरे, राजेश जोशी, अरुण कमल, विष्णु नागर, विजय कुमार, मंगलेश डबराल, लीलाधर मंडलोई आदि नाम प्रमुख हैं।

- समकालीन कविता की अंतर्धाराएं भी अलग अलग हैं। नामवर सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, मैनेजर पांडे, परमानन्द श्रीवास्तव समेत कई बाद तक के आलोचक प्रतिबद्ध मार्क्सवादी हैं। दूसरे छोर पर मार्क्सवाद का विरोध या उससे निस्पृहता है - रमेशचंद्र साह, अशोक वाजपेयी, वागीश शुक्ल, मदन सोनी, ज्योतिष जोशी आदि। नई पीढ़ी में सभी समर्थ आलोचक मार्क्सवादी हैं, जैसे प्रणय कृष्ण, आशुतोष कुमार, पंकज चतुर्वेदी, कृष्णमोहन आदि।

22.4 मार्क्सवादी आलोचना परम्परा

- जैसा कि पहले ही उल्लेख हुआ समकालीन आलोचक अधिकांशतः मार्क्सवादी अथवा वामपंथी हैं। प्रगतिशील आंदोलन की एक गहरी छाप उन पर है, जिसे उन्होंने अगली पीढ़ियों तक अपने श्रेष्ठतम रूप में बढ़ाया। मार्क्सवादी आलोचना की बात करें तो साफ़ तौर एक परम्परा का विकास हुआ है। डॉ. रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, नामवर सिंह, बच्चन सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, देवीशंकर अवस्थी, मैनेजर पांडे, मधुरेश, पुरुषोत्तम अग्रवाल, रामकृपाल पांडे, पांडेय शशिभूषण शीतांशु, रविभूषण, कुंवरपाल सिंह, परमानंद श्रीवास्तव, वीरन्द्र यादव और बीच की पीढ़ी के कवि आलोचक मुक्तिबोध, विष्णु खरे, चंद्रकांत देवताले, विजय कुमार, राजेश जोशी, अरुण कमल, मंगलेश डबराल, लीलाधर मंडलोई। नई पीढ़ी के प्रणय कृष्ण, कृष्णमोहन, पंकज चतुर्वेदी आदि। एक पूरी साठ साल की परम्परा है यह, जिसे हम मार्क्सवादी आलोचना कह रहे हैं। इसमें कुछ भीतरी रंग भी हैं, जैसे कवि विजेन्द्र और आलोचक जीवन सिंह का लोकराग के प्रति अतिरिक्त आग्रह।

22.5 रचना और आलोचना के बदलते ढाँचे

इन साठ सालों में रचनाओं ने अपने रंग और ढंग बदले हैं यानी उनके शिल्प-स्वरूप आदि में पर्याप्त फेरबदल हुआ है। इसी काल में तार सप्तक और प्रयोगवाद हुआ। इसी काल खंड में नई कविता और नई कहानी आए। किसान आंदोलन हुआ। नक्सलबाड़ी और श्रीकाकुलम हुआ। आपातकाल लगा। हिंदू-सिख साम्प्रदायिकता हुई। बाबरी मस्जिद ढहा दी गई। बम विस्फोट हुए - आतंकवाद बढ़ता ही गया। उधर देश की व्यापार और अर्थनीतियों में आमूलचूल परिवर्तन हो गया। नेहरू युग का समाजवाद अब ढह गया। भारत खुले बाज़ार का एक हिस्सा बन गया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ आर्यीं। किसानों से ज़मीनें छीनी जाने लगीं। किसान आत्महत्याएं करने लगे। आज़ादी के बाद कितना कुछ हुआ इस देश में उसे संक्षिप्त रूप में लिखना भी दरअसल विस्तार ही होगा।

इन बदलावों के कारण सभी रचना विधाओं में विषयवस्तु और शिल्प में परिवर्तन हुआ। मार्क्सवादी आलोचना चूँकि सैद्धान्तिक आलोचना है इसलिए उस नई बदलावों को समझने की जिम्मेदारी सबसे अधिक थी।

नई कहानी से बात आरम्भ करें तो ये नई आजादी के बाद अब सपनों के बनने-टूटने का सिलसिला था। बनने का कम, टूटने का ज्यादा। हिंदी आलोचना के सामने भी रचनाओं के बदलने का सवाल था। अब कहानी महज कहानी न कही जाकर नई कहानी कही जा रही थी और वह भी स्वयं कहानीकारों द्वारा। आलोचना को अपने सिद्धान्तों की कसौटी पर देखना था कि नया क्या है। नामवर सिंह ने शिल्प और अनूठे भाषा प्रयोग के लिए निर्मल वर्मा की परिन्दे कहानी को पहली नई कहानी का श्रेय दे दिया। नई कहानी के साथ आंचलिक कथाकार भी थे। आंचलिकता एक आन्दोलन हो चला था और उसके समर्थक भी काफी थे। मार्क्सवादी आलोचना को देखना था कि आंचलिक समाज जो कि सामन्ती समाज भी है किस तरह कथा-कहानी में आ रहा है।

कुछ कहानीकार प्रतिबद्ध मार्क्सवादी थे, उन्हें कैसे नया कहानीकार कहना है या उनमें क्या नया है, यह देखना भी मार्क्सवादी आलोचना के जिम्मे था। नामवर सिंह तो विचारधारा के लिए उस वक़्त इतने प्रतिबद्ध थे कि साहित्य छोड़ अपने ग्रामीण इलाके से सांसद का चुनाव लड़ने चले गए थे, जीत नहीं पाए, ये दीगर बात है और साहित्य के लिए अच्छी भी कि इस कारण इस भाषा को उसका इतना समर्थ आलोचक मिला। भैरवप्रसाद गुप्त के कहने पर उन्होंने कहानी की आलोचना श्रंखलाबद्ध ढंग से उनकी पत्रिका में की, जिसका बाद में **कहानी:नई कहानी** नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशन हुआ। कविता में प्रगतिवाद के विरुद्ध प्रयोगवाद का नारा था, जिसे अज्ञेय बड़ी सौम्यता से चला रहे थे। आगे चल कर नई कविता हो गया। लक्ष्मीकांत वर्मा एक लोहियावादी विद्वान हुए जिन्होंने नई कविता के प्रतिमान नामक पुस्तक लिखी, जिसमें क्षणवाद और लघुमानववाद की अस्तित्ववादी स्थापनाएं थीं। इस पुस्तक के प्रतिकार रूप में कहें तो हमें नामवर सिंह की पुस्तक कविता के नए प्रतिमान मिली।

मुक्तिबोध महाराष्ट्रीय परिवेश के कवि थे जो फंतासी के शिल्प में ऐसी हिंदी कविताएं लिख रहे थे, जो हिंदी में विचार और भाषा दोनों में एक नया अनुभव था- हालांकि मुक्तिबोध के महत्व और महानता को हिंदी समाज ने उनकी मृत्यु के बाद स्वीकारा। डॉ. रामविलास शर्मा उन दिनों **नई कविता और अस्तित्ववाद** लिख रहे थे। उन्हें मुक्तिबोध अस्तित्ववाद के निकटतम कवि लगे और अपनी प्रिय प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल से तुलना करते हुए उन्होंने मुक्तिबोध को नकारना आरम्भ किया। नामवर सिंह ने मुक्तिबोध के प्रतिबद्ध वामपंथी रूप को पहचाना, इसमें हरिशंकर परसाई और शमशेर भी उनके सहायक हुए। नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'कविता के नए प्रतिमान' मुक्तिबोध को ही समर्पित करते हुए यह भी स्वीकार किया है कविता

के नए प्रतिमान के केंद्र में मुक्तिबोध हैं। नई कहानी और नई कविता दोनों अपने वक्रत पर अपने अवसान को समर्पित हुए। किसान आंदोलन और जमींदारों के अत्याचार ने श्रीकाकुलम और नक्सलबाड़ी को जन्म दिया। हिंदी संसार तब अकविता और अकहानी में कहीं उलझ रहा था। धूमिल, राजकमल चौधरी, केदारनाथ सिंह, लीलाधर जगूड़ी, चंद्रकांत देवताले, वेणुगोपाल, कुमार विकल, सौमित्र मोहन आदि कई कवि हिंदी कविता के फलक पर आए। उधर प्रगतिशील कविता के चारों कवि अपनी प्रतिभा के शिखर पर थे। उनकी रचनाएं लगातार आ रही थीं। कविता की इस प्रचुरता का सारा मूल्यांकन आलोचना में होना था। हिंदी आलोचना में अब दो विभाजन दिखने लगे थे। पहला स्पष्ट रूप से मार्क्सवादी था और प्रभावी भी, दूसरा कवि अशोक वाजपेयी के इर्दगिर्द घुम रहा था। यह नवआलोचक मार्क्सवादी रचना और आलोचना दोनों का निकट निरीक्षण अपने मानदंडों पर करते थे।

हिंदी कविता के समकालीन संसार में एक परम्परा आठवें दशक की पीढ़ी कहने की है, जिसमें आलोक धन्वा, वीरेन डंगवाल, अरुण कमल, मनमोहन, मंगलेश डबराल, असद जैदी आदि आते हैं। ये सभी नक्सलबाड़ी आंदोलन की वैचारिकी से उत्पन्न कवि माने गए और इनकी आलोचना मार्क्सवादी सिद्धान्तों में सहूलियत के साथ हुई किंतु प्रतिपक्ष में इन पर कई प्रश्न भी उठाए गए।

22.6 डॉ. नामवर सिंह का व्यक्तित्व

नामवर सिंह का जन्म 28 जुलाई 1926 को बनारस जिले के जीयनपुर गांव में हुआ। एक सामान्य किसान परिवार में जन्मे नामवर सिंह ने प्राथमिक शिक्षा बनारस के देहाती स्कूलों में प्राप्त की फिर बनारस उदयप्रताप कालेज से इंटर किया। यहीं से लिखने का सिलसिला भी शुरू हुआ जो गद्य न होकर कविता में था।

पहली कविता इंटर करते हुए क्षत्रियमित्र नामक पत्रिका में छपी। 1949 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से बी.ए., 1951 में एम.ए. तथा वहीं से 1956 में पी-एच.डी. की। 1953 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय में व्याख्याता के पद पर अस्थाई नियुक्ति भी हुई। 1959 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में चक्रिया-चन्दौली लोकसभा सीट पर चुनाव लड़ा और हारे। इसी वर्ष काशी हिंदू विश्वविद्यालय से भी कार्यमुक्त हुए। 1959-60 में म.प्र. के सागर विश्वविद्यालय में कुछ समय के लिए नियुक्ति रहे। विभागीय राजनीति के चलते पद छोड़कर 1960 से 65 तक बनारस में ही रहकर स्वतंत्र लेखन किया। 1965 में पार्टी के जनयुग साप्ताहिक में सम्पादक होकर दिल्ली आए। इसी के साथ राजकमल प्रकाशन के साहित्यिक सलाहकार भी हुए और अब तक हैं। 1967 से राजकमल प्रकाशन की आलोचना पत्रिका सम्पादन। 1970 में जोधपुर विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष-प्रोफेसर

के रूप में नियुक्त। 1974 में कुछ समय के लिए क.मा.मुं. हिंदी विद्यापीठ आगरा के निदेशक भी रहे और उसी साल जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केंद्र में हिंदी के प्रोफेसर नियुक्त हुए और 1987 में वहां से सेवानिवृत्त होने के बाद 5 वर्ष के लिए पुनः नियुक्त। 1993 से 96 तक राजा राममोहन राय लाइब्रेरी फाउंडेशन के अध्यक्ष रहे। फिलहाल महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय वर्धा के कुलाधिपति हैं। उनकी लिखी पुस्तकों की सूची निम्नवत है -

1. पृथ्वीराज रासो: भाषा और साहित्य
2. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां
3. कहानी: नई कहानी
4. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान
5. काशी के नाम
6. आलोचक के मुख से
7. वाद विवाद संवाद
8. दूसरी परम्परा की खोज
9. कविता के नए प्रतिमान
10. इतिहास और आलोचना
11. छायावाद
12. ज़माने से दो-दो हाथ
13. हिंदी का गद्यपर्व
14. प्रेमचंद और भारतीय समाज
15. कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता

नामवर सिंह के इस संक्षिप्त जीवनवृत्त से पता लगता है कि उन्होंने हिंदी में कितने क्षेत्रों में कितना योगदान और कितना विपुल लेखन किया है।

1 बोध प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. समकालीनता क्या है?
2. नामवर सिंह ने रस सिद्धान्त के विषय में क्या कहा है?
3. नामवर सिंह ने छायावाद के विषय में क्या कहा है?
4. समकालीन आलोचकों के नाम लिखिए।

2 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

क .निम्न में से कौन समकालीन आलोचक नहीं है

अ. विश्वनाथ त्रिपाठी

ब. हजारी प्रसाद द्विवेदी

स. प्रियम अंकित

द. पंकज चतुर्वेदी

ख .निम्न में से कौन सा आलोचक मार्क्सवादी नहीं है

अ. विश्वनाथ त्रिपाठी

ब. अशोक वाजपेई

स. राजेश जोशी

द. इनमें से कोई नहीं

22.7 डॉ. नामवर सिंह के आलोचना सिद्धान्त

जैसा कि पहले भी स्पष्ट हुआ है कि नामवर सिंह एक राजनीतिक चेतना के व्यक्ति हैं। रामविलास शर्मा की तरह वे घोषित कम्युनिस्ट हैं। अतः नामवर सिंह आलोचना का प्रमुख एवं मूल सिद्धान्त तो मार्क्सवाद ही है। उसे कुछ बिन्दुओं में हम इस तरह देख सकते हैं।

1. नामवर सिंह वाद के विवादों को निरर्थक मानते हैं। उनकी विचारधारा मार्क्सवाद प्रेरित और प्रतिबद्ध है किंतु हिंदी में चल पड़े कई-कई वादों पर उनका अभिमत इस प्रकार है -हिंदी में साहित्यिक वादों एवं प्रवृत्तियों का परिचय अनेक पुस्तकों में सुलभ है। सर्वत्र वादों की संख्या गिनाने की होड़-सी लगी हुई है। बहुज्ञता प्रदर्शित करने के लिए जैसे सबसे खुला मैदान यही दिखाई पड़ रहा है। कोशिश यही है कि किसी पाश्चात्य वाद का नाम न छूट जाए। कुछ उत्साही तो अपनी मौलिक खोज प्रमाणित करने के लिए हर यूरोपीय वाद के लिए हिंदी में कुछ-न-कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत कर देते हैं। इस प्रकार हिंदी धड़ल्ले से अभिव्यंजनावाद, अतिथथार्थवाद, अस्तित्ववाद, प्रतीकवाद, प्रभाववाद, बिम्बवाद, भविष्यवाद, समाजवादी यथार्थवाद आदि की चर्चा हो रही है, गोया ये सभी प्रवृत्तियाँ हिंदी साहित्य की हैं अथवा हिंदी में भी प्रचलित रही हैं। कहना न होगा कि ज्ञानवर्धन के इन उत्साही प्रयत्नों से आधुनिक हिंदी साहित्य की अपनी वास्तविक प्रकृति के बारे में भ्रम फैल रहा है।
2. नामवर सिंह ने आधुनिक साहित्य प्रवृत्तियाँ नामक पुस्तक लिखते हुए सिर्फ चार प्रवृत्तियों को मान्यता दी है - छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद।
3. नामवर सिंह के अनुसार छायावाद हिंदी के रोमांटिक उत्थान काव्यधारा है जो 1918 से 1936 तक प्रभावी रही और जिसमें प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी प्रमुख कवि हुए। नामवर सिंह के शब्दों में छायावाद सामान्य भावोच्छ्वास प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना वैभव की वह 'स्वच्छन्द प्रवृत्ति' है जो देश-काल-गत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा-आकांक्षा में निरन्तर व्यक्त होती रही। स्वच्छन्दता की उस सामान्य भाव-धारा की विशेष अभिव्यक्ति का नाम हिंदी साहित्य में छायावाद पड़ा।
4. नामवर सिंह की मानना है कि रहस्य-भावना प्राचीन है किन्तु रहस्यवाद नवीन। रहस्यवाद का सम्बन्ध कुछ भक्तिकाल से और कुछ छायावाद से है। नामवर सिंह उसे छायावाद से ही जोड़ते हैं -रहस्यवाद आधुनिक है और हिंदी में छायावादी काव्य आंदोलन से सम्बद्ध है।
5. प्रगतिवाद वह चिंतनधारा है जिससे नामवर सिंह के आलोचक का जन्म हुआ। 1958 के आसपास सैद्धान्तिक रूप से वे लिखते हैं कि प्रगतिवाद के इन बीस वर्षों का इतिहास साहित्य में स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भावभूमि और उच्च विचार के निरन्तर का विकास इतिहास है, जो केवल राजनीतिक जागरण से आरम्भ होकर क्रमशः जीवन की व्यापक समस्याओं की ओर, आदर्शवाद से आरम्भ होकर क्रमशः यथार्थवाद की ओर और यथार्थवाद अथवा नग्न यथार्थ से आरम्भ होकर क्रमशः स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है।

6. नामवर सिंह के सामने नई कविता का प्रश्न था। नई कविता के प्रतिमान नाम की एक समूची पुस्तक ही थी और नएन के सायास आग्रह के साथ कवियों का समूह था। नामवर सिंह ने कविता के नए प्रतिमान की भूमिका के पहले वाक्य में स्पष्ट कर दिया है कि नए से उनका आशय क्या है- किसी काव्यकृति का कविता होने के साथ ही नई होना अभीष्ट है। वह नई हो और कविता न हो, यह स्थिति साहित्य में कभी स्वीकार्य नहीं हो सकती।
7. इससे पहले हमने रचना और आलोचना के बदलते ढंग की बात की। नामवर सिंह मानते हैं कि कविता जब नई होगी या नए ढंग पर लिखी जाएगी, उसके लिए नए प्रतिमानों की जरूरत होगी। यहां स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि नामवर सिंह मार्क्सवादी सिद्धान्तों हटने की बात नहीं कर रहे। मुक्तिबोध उनकी पुस्तक **कविता के नए प्रतिमान** के केन्द्र में है, अतः सोच तो वही मार्क्सवादी रहेगी पर अभिव्यक्ति का ढंग बदलेगा और उसे परखने वाले आलोचना के प्रतिमान या उपकरण बदलेंगे।
8. अपने पूर्ववर्ती हर समर्थ आलोचक की तरह नामवर सिंह भी रस सिद्धान्त पर अपना मंतव्य स्पष्ट करते हैं। उन्होंने रस के प्रतिमान की प्रसंगानुकूलता पर बात की है। दरअसल नामवर के साथ डॉ. नगेन्द्र भी आलोचना में सक्रिय थे और अपने समय के कवियों में रस निष्पत्ति खोज रहे थे। नामवर सिंह रस को नए रूप में देखना चाहते हैं। इस क्रम में नामवर सिंह रस की **गूढ़ता** के बजाए कविता के आस्वाद पर बल देते हैं। उन्हें लगता है कि समकालीन नए कवियों पर रस आरोपित करने से बेहतर है कि उनकी कविता में आस्वाद के तत्व खोजे जाएं।
9. नामवर सिंह ने एक अहम काम कथालोचक के सन्दर्भ में किया है जो 'कहानी: नई कहानी' नाम से उपलब्ध है। नई कहानी आंदोलन के दौरान तीन धाराएं थीं जो साफ़ अलग दिखती थीं। पहली शेखर जोशी और भीष्म साहनी जैसे मार्क्सवादियों की, दूसरी रेणु जैसे आंचलिकों की, तीसरी मोहन राकेश-राजेन्द्र यादव-कमलेश्वर की त्रयी और चौथी जिसमें शैलेश मटियानी और शानी जैसे कहानीकार थे। निर्मल वर्मा उस दौर के बड़े कथाकार थे और नामवर जी ने उनकी कहानी परिन्दे को पहली नई कहानी का खिताब दिया था हालांकि बाद में अपनी चूक मानते हुए उसे उन्होंने लौटा भी लिया। नामवर सिंह ने नए कहानीकारों पर महत्वपूर्ण लेख लिखे, जो समय के साथ दस्तावेज जैसे हो गए हैं।
10. नामवर सिंह के आलोचना में सक्रिय होने तक आलोचना में बहुत काम हो चुका था लेकिन तब भी लोग छायावादोत्तर कविता के मूल्यांकन में आ रही समस्या की बात करते थे। दरअसल पुराने खांचे टूटने से यह समस्या खड़ी हुई। छायावाद तक भी लोग रस, छन्द, अलंकार खोज लेते थे और बिम्ब-प्रतीक जैसे आधुनिक

उपकरणों की झलक भी दिखा लेते थे पर नए कवियों जैसे मुक्तिबोध के साथ ये सब करना असम्भव था। इस पर नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक कविता के नए प्रतिमान में विस्तार से लिखा है।

11. नई कविता के समय में अचानक रामधारी सिंह दिनकर की पुस्तक 'उर्वशी' छप कर आयी। ये किताब परम्परागत छंद में थी और आलोचना नए रास्ते पर चल पड़ी थी। अपने शिल्प में यह किताब चालीस बरस पीछे थी अतः विषयवस्तु में ही कुछ बहस सम्भव थी। नामवर सिंह ने कल्पना में छपे उर्वशी विवाद पर कुछ पृष्ठ कविता के नए प्रतिमान में लिखे हैं। उन्होंने इसे पारम्परिक और आधुनिक जीवनमूल्यों का टकराव माना है।
12. उर्वशी के साथ ही यह हुआ कि कई आलोचकों ने छायावादी कृति कामायनी पर पुनर्विचार करने के प्रयत्न किए। इस पुनर्मूल्यांकन में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेवनारायण साही से लेकर मुक्तिबोध तक संलग्न रहे। मुक्तिबोध ने कामायनी को फैंटसी रूप में देखा-जाँचा-परखा और उसमें निहित जीवनमूल्यों की समीक्षा की। एकदम यही राह फिर नामवर सिंह ने मुक्तिबोध की कविता के सन्दर्भ में अपनायी।
13. नई कविता के सामने काव्यभाषा और सृजनशीलता का प्रश्न भी था। काव्यभाषा कैसी हो? गद्यभाषा से कितनी अलग हो या नहो? उसमें सृजनशीलता का पक्ष कैसे मुखर हो - ये सब प्रश्न तब कि ही नहीं अब की कविता के भी हैं। इस विषय में नामवर सिंह ने विजयनारायण देव साही के कथन का सन्दर्भ लेते हुए कहा है कि कविता को बोलचाल भी भाषा के निकट लाने का अर्थ केवल बोलचाल के शब्दों को अपनाने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सही माने में आज के जीवन की धड़कन को व्यक्त करने वाली लय को गहरे तक पकड़ना है। काव्यभाषा की सृजनशीलता पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि काव्यभाषा की सृजनशीलता को किसी एक नुस्खे अथवा कुछ नुस्खों में बांधना असम्भव है। भाषा, कवि से जिस सृजनशीलता की अपेक्षा रखती है, वहीं सृजनशीलता आलोचक के लिए भी आवश्यक है।
14. नामवर सिंह के आलोचना में पदार्पण के साथ ही काव्य बिम्ब और सपाटबयानी अथवा बिम्बविहीनता का प्रश्न भी उठने लगा था। अंग्रेजी में ये इमेज और नरेशन के सवाल थे। हिंदी आलोचक के सम्मुख इनका उठना लाजिमी ही था खासकर तब जबकि नागार्जुन, अज्ञेय, शमशेर बहादुर सिंह, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, धूमिल, चन्द्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी, केदारनाथ सिंह आदि एक साथ रचनारत हों। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि कविता में अर्थग्रहण भर से काम नहीं चलता बिम्बग्रहण भी

आवश्यक होता है। नई कविता अपने बुनियादी रूप में बिम्बधर्मी थी। नामवर सिंह ने कविता के नए प्रतिमान में इस बिम्बधर्मिता के कई सकारात्मक उदाहरण (नागार्जुन कृत अकाल और उसके बाद) प्रस्तुत करते हुए उसका समर्थन भी किया है, लेकिन फिर वे रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा और केदारनाथ सिंह की काव्यपंक्तियों का हवाला देते हुए सपाटबयानी तक आते हैं। उनके अनुसार कविता में सपाटबयानी का यह आग्रह वस्तुतः गद्य सुलभ जीवन्त वाक्य विन्यास को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग में बिंबवादी रूढ़ान निश्चित रूप से बाधक रहा। इसके बाद नामवर सिंह ने कविता के गद्य को सन्दर्भित करने के लिए त्रिलोचन का उदाहरण दिया - नई कविता के उत्कर्षकाल में भी प्रवाह-पतित होने का खतरा उठा कर एक कवि धारा के विरुद्ध वाक्य विन्यास की रक्षा के लिए आवाज़ बुलन्द करता रहा, लेकिन उसकी आवाज़ न तब सुनी गई न अब - वह कवि है 'धरती' और 'दिगंत' का रचनाकार त्रिलोचन। जाहिर नामवर सिंह बिम्ब और सपाटबयानी, दोनों ही प्रकरण में अतिवादी नहीं हैं। उनके लिए दोनों का मोल है बशर्ते वो कविता हो, फिर चाहे बिम्बवादी हो या सपाटा। अपने इस सिद्धान्त को नामवर सिंह ने पिछले पचास साल से संजो कर रखा है।

15. कविता की संरचना कैसी हो, यह प्रकरण भी काफी विचार-विमर्श का विषय रहा है। नई कविता से पहले छायावाद में भी दो तरह की काव्य संरचना सामने थी - प्रगीतात्मक और नाटकीय। प्रगति, प्रयोग और नए तक पग धरते ये दो संरचनात्मक रूप कमोबेश बने रहे और नामवर सिंह ने भी इन पर विस्तार विचार किया। छायावाद में महादेवी और पंत काफी प्रगीतात्मक थे, निराला और प्रसाद भी लेकिन नाटकीयता प्रसाद और सबसे अधिक निराला में है। प्रगतिशील कविता में वह बहुत है, सबसे ज्यादा नागार्जुन के यहां। प्रयोगवाद में खुद अज्ञेय के पास भी कम नहीं। मुक्तिबोध तो उसको फंतासी के स्तर पर ले गए हैं। डॉ. नामवर सिंह प्रगीतात्मकता को महत्व देते हुए भी मुक्तिबोध के हवाले से नाटकीयता को प्रधानता देते हैं।
16. विसंगति और विडम्बना के पद नई कविता के साथ आए और नामवर सिंह ने भी उन पर अपना मंतव्य रखा। वे मानते हैं कि जीवन में यदि विसंगतियां और विडम्बनाएं हैं तो कविता में उन्हें आना चाहिए। वे इसके लिए निराला, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, प्रभाकर माचवे आदि की कविताओं के सन्दर्भ ग्रहण करते हैं। इससे पहले हमने नाटकीयता का उल्लेख किया है, उसे तनिक नामवर जी के इस कथन के साथ जोड़कर देखा जाए - स्पष्ट है कि आज की विडम्बनापूर्ण स्थिति के सम्मुख नाटकीय काव्य के लिए अपार सम्भावनाएं हैं और नाटकीय रचनाएं ही इस स्थिति की चुनौती को अच्छी तरह स्वीकार भी कर सकती हैं।

17. कविता महज मनोरंजन नहीं। आधुनिक कविता तो हरगिज़ नहीं। आज की कविताओं में अनुभूति की जटिलता और तनाव का एक अनायास विन्यास स्पष्ट देखा जा सकता है। यह अनुभूति भी अब महज अनुभूति न कह कर प्रामाणिक अनुभूति कही जाती है। नामवर सिंह का सिद्धान्त स्पष्ट है। जटिलता और तनाव अर्थात् द्वंद्वत्मकता जो मार्क्सवादी आलोचना का मूल है।

3 बोध प्रश्न- सही विकल्प चुनिए

क. निम्न में से कवि ने अपनी कविता फंतासी का प्रयोग किया है

अ. श्रीकांत वर्मा

ब. रघुवीर सहाय

स. मुक्तिबोध

द. चन्द्रकांत देवताले

ख निम्न कथनों में सत्य / असत्य का निर्धारण कीजिए

1. नामवर सिंह का जन्म बनारस के निकट भदोही ग्राम में हुआ था।
2. नामवर सिंह की पहली प्रकाशित रचना एक कविता थी
3. नामवर सिंह ने परिन्दे को पहली नई कहानी माना।
4. नामवर सिंह हिंदी अत्यधिकवादों के उल्लेख से सहमति नहीं रखते।
5. प्रणय कृष्ण समकालीन युवा आलोचक है।

घ लघु उत्तरीय प्रश्न

4. नामवर सिंह ने रहस्य-भावना के सम्बन्ध क्या विचार प्रकट किए?
5. नामवर सिंह के अनुसार प्रगतिशीलता क्या है?
6. नामवर सिंह ने उर्वशी-विवाद के सम्बन्ध में क्या मत प्रकट किया है?
7. मुक्तिबोध ने कामायनी को किस प्रकार का काव्य माना है?

22.8 सारांश

समकालीन आलोचना के इस विवेचन के बाद आप जान चुके हैं कि यह कितनी तरह जटिल चिंतनधाराओं का समुच्चय है। जैसा कि पहले भी उल्लेख हुआ इसकी प्रभावी धारा मार्क्सवाद ही रही। कई पुस्तकों पर व्यावहारिक समीक्षा होती रही, कभी मार्क्सवादी तो कभी मार्क्सवाद विरोधी, किन्तु ऐसी आलोचना उस तरह की हुई जिसे प्रभाववादी कहते हुए शुक्ल जी ने खारिज कर दिया था।

समकालीनता में प्रचुरता भी है। कितने आलोचक, कितनी अलग-अलग पीढ़ियों के, एक साथ सक्रिय हैं। नामवर सिंह अभी हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष कहे जाते हैं। उनके द्वारा बोला गया हर शब्द ध्यान से जाँचा-परखा जाता है। लिखने का क्रम नामवर सिंह कुछ सालों से नहीं निभा पा रहे किन्तु वे लगातार देशभर में विविध विषयों पर अद्भुत व्याख्यान दे रहे हैं, जिनका मोल सैद्धान्तिक आलोचना से कम नहीं। नामवर सिंह की इसी तरह की चार आलोचना पुस्तकें अभी छप कर आयी हैं और चार छपने वाली हैं।

22.9 शब्दावली

समकालीन - वर्तमान

आंचलिक - किसी विशेष भू-भाग से संबंधित

इर्दगिर्द - आस-पास

बहुज्ञता - बहुत जानना, विद्वान होना

अभीष्ट - जिसकी इच्छा हो वह वस्तु

सपाटबयानी - सीधी बात

फंतासी - फैंटेसी

22.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 2 के उत्तर

क -ब. अशोक वाजपेई

ख ब. हजारी प्रसाद द्विवेदी

बोध प्रश्न 3 के उत्तर - सही विकल्प चुनिए

क- स. मुक्तिबोध

ख - गलत

सही

सही

सही

सही

22.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नामवर संचयिता- नामवर सिंह
2. कृति विकृति संस्कृति - सत्यप्रकाश मिश्र
3. आलोचना से आगे- सुधीश पचौरी
4. हिंदी आलोचना की बीसवीं सदी - निर्मला जैन
5. हिंदी आलोचना का विकास- नंदकिशोर नवल
6. हिंदी ओलोचना - विश्वनाथ त्रिपाठी
7. आलोचना की पहली किताब - विष्णु खरे

22.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. समकालीन आलोचना से आप क्या समझते हैं? समकालीन और शुक्ल जी आलोचना में अंतर बताइए।
2. समकालीन शब्द का आपकी दृष्टि में क्या अर्थ है? समकालीन मार्क्सवादी आलोचना की परम्परा पर प्रकाश डालिए।
3. डॉ. नामवर सिंह के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए तथा उनके प्रमुख आलोचना सिद्धान्त का विवेचन कीजिए